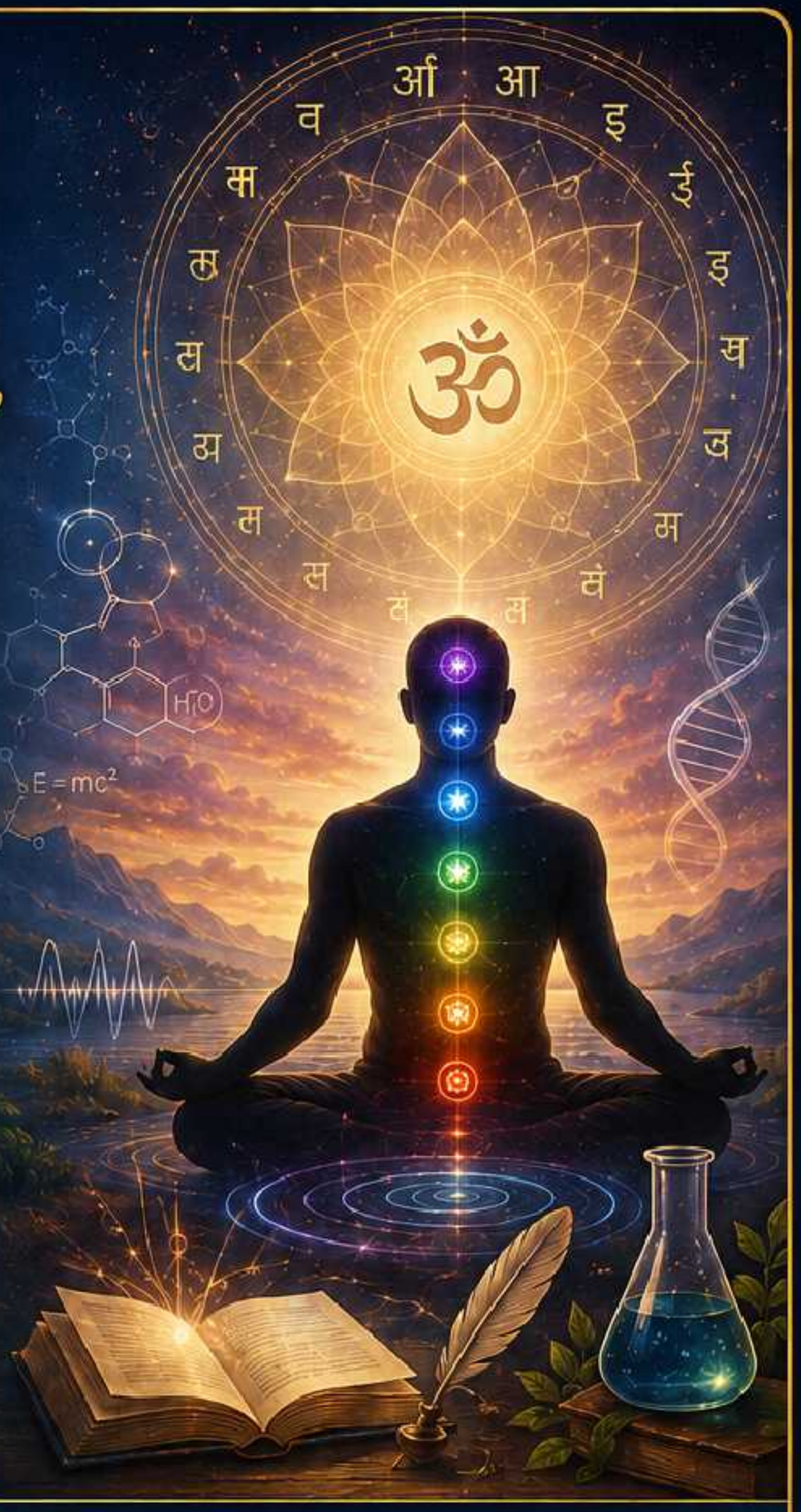
पुस्तक परिचय

क्या मनुष्य केवल शरीर है?
क्या विचार, ध्वनि, श्वास और चेतना के बीच कोई गहरा संबंध है?
क्या विज्ञान और अध्यात्म एक-दूसरे के विरोधी हैं
या सत्य की खोज के दो मार्ग?

"ब्रह्म रसायन विद्या – एक साधक की चेतना यात्रा"
एक ऐसे साधक की कहानी है, जो जीवन के गहरे प्रश्नों के उत्तर खोजने निकलता है।
गुरू के मार्गदर्शन, साधना और आत्म-अनुभवों के माध्यम से वह समझता है कि—

- **शरीर** प्रकृति की अद्भुत प्रयोगशाला है।
- **मन** विचारों और भावनाओं का केंद्र है।
- **ध्वनि और अक्षर** ज्ञान के माध्यम हैं।
- **साधना** आत्म-परिवर्तन का विज्ञान है।
- **चेतना** मानव जीवन का सबसे गहरा रहस्य है।

यह उपन्यास केवल एक कथा नहीं, बल्कि स्वयं को जानने, जीवन को समझने और मानव कल्याण की दिशा में आगे बढ़ने का निमंत्रण है।





लेखक के शब्द

"मेरी खोज स्वयं को जानने से प्रारंभ हुई, परन्तु धीरे-धीरे अनुभव हुआ कि यह यात्रा केवल मेरी नहीं, संम्पूर्ण मानवता की चेतना-जागरण यात्रा है।
यदि यह पुस्तक किसी एक व्यक्ति के जीवन में भी सकारात्मक परिवर्तन ला सके, तो मेरा लेखन सार्थक होगा।"

— रविशंकर साहू

मुख्य संदेश

ज्ञान से जागरूकता
↓
जागरूकता से परिवर्तन
↓
और परिवर्तन से
मानव कल्याण

स्वयंम्बल गुरुकुल

सावर्णी मनुष्यधर्म संस्थापन

SKAR –
Spiritual Knowledge Associate and Research

- विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय
- चेतना जागरण और आत्म विकास
- मानव कल्याण और विश्व शांति
- सत्य की खोज – जीवन का लक्ष्य

ISBN 978-93-92050-XX-X
9 789392 050XXX
आध्यात्मिक-बैज्ञानिक उपन्यास
मूल्य : ₹ 499/-

ज्ञान का प्रकाश • चेतना का विकास • मानवता का कल्याण

उपन्यास का शीर्षक

ब्रह्म रसायन विद्या

एक साधक की चेतना यात्रा

उपशीर्षक:

विज्ञान • साधना • ध्वनि • ऊर्जा • मन • चेतना का अद्भुत संगम

लेखक:

रविशंकर साहू

(श्रीश्रीविवस्वत् मनू रविशंकर बाबाजी)

मार्गदर्शक

श्रीश्रीकाल्कि महाऋषि मालोबाबा

ब्रह्म रसायन विद्या : एक साधक की चेतना यात्रा

उपशीर्षक:

एक साधक की अंतर्यात्रा — विज्ञान • साधना • ध्वनि • ऊर्जा • मन और आत्मज्ञान का संगम

लेखक:
रविशंकर साहू
(श्रीश्रीविवस्वत् मनू रविशंकर बाबाजी)

पुस्तक परिचय

"ब्रह्म रसायन विद्या : एक साधक की चेतना यात्रा" एक आध्यात्मिक-वैज्ञानिक उपन्यास है, जिसमें एक साधक की खोज यात्रा के माध्यम से मनुष्य के शरीर, मन, ऊर्जा और चेतना के रहस्यों को समझने का प्रयास किया गया है।

यह यात्रा प्रारंभ होती है एक प्रश्न से—

"क्या मनुष्य केवल शरीर है, या उसके भीतर कोई गहरी चेतना भी विद्यमान है?"

इस कथा में विज्ञान और साधना के संवाद के माध्यम से ध्वनि, अक्षर, विचार, श्वास, ऊर्जा, ध्यान और आत्मबोध के विभिन्न आयामों को प्रस्तुत किया गया है।

मुख्य विषय

- चेतना का विज्ञान
- ध्वनि और नाद का रहस्य
- मानव शरीर : एक जीवित प्रयोगशाला
- विचारों और भावनाओं का प्रभाव
- विज्ञान और अध्यात्म का संतुलन
- ज्ञान से जनकल्याण की यात्रा

मुख्य संदेश

"मनुष्य की सबसे बड़ी खोज बाहरी संसार को जानना नहीं, बल्कि अपने भीतर छिपे प्रकाश को पहचानना है।"

प्रस्तावना

ब्रह्म रसायन विद्या चेतना का विज्ञान

एक साधक की अंतरिक यात्रा

मनुष्य ने सदियों से ब्रह्मांड के रहस्यों को जानने का प्रयास किया है। उसने तारों की दूरी मापी, परमाणु की गहराइयों में प्रवेश किया, प्रकृति के नियमों को समझा और विज्ञान के माध्यम से अनेक उपलब्धियाँ प्राप्त कीं।

लेकिन एक प्रश्न आज भी उतना ही महत्वपूर्ण है—

"स्वयं मनुष्य क्या है?"

क्या मनुष्य केवल शरीर, कोशिकाओं और रासायनिक प्रक्रियाओं का समूह है?
या उसके भीतर विचार, अनुभव, भावनाएँ और चेतना का कोई गहरा आयाम भी है?

"ब्रह्म रसायन विद्या : चेतना का विज्ञान" इसी खोज की एक साहित्यिक यात्रा है। यह एक साधक की उस अंतर्यात्रा की कथा है, जहाँ वह बाहरी संसार को समझते-समझते अपने भीतर के संसार को जानने का प्रयास करता है।

इस यात्रा में विज्ञान और साधना एक-दूसरे के विरोधी नहीं, बल्कि ज्ञान के दो मार्गों के रूप में सामने आते हैं। विज्ञान हमें पदार्थ, ऊर्जा और प्रकृति के नियमों को समझने की प्रेरणा देता है, जबकि आत्मचिंतन हमें अपने विचारों, भावनाओं और चेतना को समझने की दिशा दिखाता है।

इस पुस्तक में ध्वनि, अक्षर, श्वास, मन, ऊर्जा, ध्यान और मानव चेतना जैसे विषयों को कथा के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। इसका उद्देश्य किसी एक विचार को अंतिम सत्य के रूप में स्थापित करना नहीं, बल्कि जिज्ञासा, अध्ययन और आत्मअन्वेषण की भावना को जागृत करना है।

मनुष्य का शरीर स्वयं एक अद्भुत प्रयोगशाला है। इसमें अनगिनत जैविक और रासायनिक प्रक्रियाएँ निरंतर चलती रहती हैं। इसी प्रकार मन भी विचारों, अनुभवों और भावनाओं का एक विशाल क्षेत्र है। जब मनुष्य स्वयं को समझने की यात्रा प्रारंभ करता है, तब उसके जीवन में एक नया दृष्टिकोण विकसित होता है।

यह उपन्यास एक प्रश्न से शुरू होता है—

"मैं कौन हूँ?"

और धीरे-धीरे उस अनुभूति की ओर बढ़ता है—

"मैं प्रकृति और ब्रह्मांड से अलग नहीं, बल्कि उसी व्यापक अस्तित्व का एक भाग हूँ।"

इस पुस्तक की मूल भावना है—

ज्ञान के साथ विनम्रता, विज्ञान के साथ विवेक, और साधना के साथ सेवा।

क्योंकि सच्चा ज्ञान वही है जो केवल व्यक्ति को नहीं, बल्कि संपूर्ण मानवता के कल्याण का माध्यम बने।

— **रविशंकर साहू**
(श्रीश्रीविवस्वत् मनू रविशंकर बाबाजी)

उद्देश्य

ब्रह्म रसायन विद्या चेतना का विज्ञान :

एक साधक की अंतर्यात्रा

इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य मनुष्य को अपने शरीर, मन, ऊर्जा और चेतना को समझने की दिशा में प्रेरित करना है। यह एक ऐसी यात्रा प्रस्तुत करती है, जिसमें विज्ञान, आत्मचिंतन और जीवन अनुभवों के माध्यम से मानव अस्तित्व के विभिन्न आयामों को समझने का प्रयास किया गया है।

पुस्तक के प्रमुख उद्देश्य:

1. आत्मज्ञान की खोज

मनुष्य को यह समझने के लिए प्रेरित करना कि स्वयं को जानना जीवन की सबसे महत्वपूर्ण खोजों में से एक है।

2. विज्ञान और चेतना के बीच संवाद स्थापित करना

भौतिक विज्ञान, जीव विज्ञान और मानव अनुभवों को चेतना के अध्ययन के साथ जोड़कर एक व्यापक दृष्टिकोण विकसित करना।

3. मानव शरीर को एक सूक्ष्म प्रयोगशाला के रूप में समझना

शरीर में होने वाली जैविक, रासायनिक और ऊर्जा संबंधी प्रक्रियाओं के प्रति जागरूकता बढ़ाना।

4. ध्वनि, अक्षर और विचारों के महत्व को समझना

यह समझना कि भाषा, वाणी और विचार मानव मन एवं व्यवहार को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण माध्यम हैं।

5. मन और भावनाओं का संतुलन

ध्यान, आत्मनिरीक्षण और सकारात्मक जीवन दृष्टिकोण के माध्यम से मानसिक संतुलन की आवश्यकता को प्रस्तुत करना।

6. वैज्ञानिक दृष्टिकोण और विवेक का विकास

हर ज्ञान को जिज्ञासा, अध्ययन और समझ के आधार पर ग्रहण करने की प्रेरणा देना।

7. युवा पीढ़ी में ज्ञान और सेवा की भावना विकसित करना

ऐसी शिक्षा का संदेश देना जो केवल सफलता नहीं, बल्कि जिम्मेदारी और मानव कल्याण की भावना भी विकसित करे।

8. प्रकृति और मानव के संबंध को समझना

यह अनुभव कराना कि मनुष्य प्रकृति का एक अभिन्न भाग है और पर्यावरण संरक्षण उसका कर्तव्य है।

9. ज्ञान को जनकल्याण का माध्यम बनाना

व्यक्तिगत विकास से आगे बढ़कर समाज और मानवता के हित में कार्य करने की प्रेरणा देना।

10. जीवन को एक जागरूक यात्रा के रूप में देखना

यह संदेश देना कि जीवन केवल बाहरी उपलब्धियों की यात्रा नहीं, बल्कि भीतर के प्रकाश को पहचानने की यात्रा भी है।

मुख्य उद्देश्य:
"मनुष्य को ज्ञान, विज्ञान, चेतना और सेवा के संतुलन द्वारा एक जागरूक एवं संवेदनशील जीवन की ओर प्रेरित करना।"

अध्याय 1 : खोज की पहली पुकार

रात का अंतिम पहर था। चारों ओर गहरा सन्नाटा पसरा हुआ था। दूर कहीं मंदिर की घंटी की मधुर ध्वनि हवा में तैर रही थी। आकाश असंख्य तारों से भरा था, मानो स्वयं ब्रह्मांड किसी अनदेखे रहस्य का संकेत दे रहा हो।

रविशंकर अपनी छोटी-सी प्रयोगशाला में बैठा था। सामने रसायन विज्ञान की पुस्तकें खुली थीं, पर उसका मन उनमें नहीं लग रहा था। वर्षों तक उसने परमाणुओं, अणुओं, ऊर्जा और रासायनिक अभिक्रियाओं का अध्ययन किया था, फिर भी उसके भीतर एक प्रश्न बार-बार उठता था—

"क्या जीवन केवल रसायनों का खेल है?"

उसी क्षण उसे अपने बचपन की एक घटना याद आई। उसके दादाजी कहा करते थे—

"बेटा, इस संसार की हर वस्तु ध्वनि से उत्पन्न हुई है। शब्द केवल आवाज़ नहीं, सृष्टि की पहली शक्ति है।"

तब वह हँस दिया करता था। पर आज वही वाक्य उसके भीतर गूँज रहा था।

उसने अपनी आँखें बंद कीं। कुछ क्षणों बाद उसे ऐसा अनुभव हुआ मानो किसी अत्यंत सूक्ष्म ध्वनि ने उसके भीतर प्रवेश किया हो। वह ध्वनि न कानों से सुनाई दे रही थी, न किसी यंत्र से मापी जा सकती थी। फिर भी वह स्पष्ट थी।

धीरे-धीरे वह ध्वनि एक अक्षर का रूप लेने लगी—

"ॐ..."

उसके पूरे शरीर में एक अनजाना कंपन फैल गया। उसे लगा जैसे प्रत्येक कोशिका उसी कंपन के साथ स्पंदित हो रही हो।

रविशंकर घबरा कर उठ बैठा।

"क्या यह केवल कल्पना है? या वास्तव में ध्वनि का शरीर और चेतना पर प्रभाव होता है?"

अगले दिन उसने विश्वविद्यालय की प्रयोगशाला में ध्वनि-तरंगों पर प्रयोग प्रारंभ किए। अलग-अलग आवृत्तियों पर पानी, क्रिस्टल और सूक्ष्म कणों की संरचना बदलती दिखाई दी। वैज्ञानिक तथ्य उसके सामने थे, पर उनका उत्तर अधूरा था।

रात को उसने अपनी डायरी में लिखा—

"यदि ध्वनि पदार्थ को बदल सकती है, तो क्या शब्द मनुष्य के मन और चेतना को भी बदल सकते हैं?"

यही प्रश्न उसकी जीवन-यात्रा का पहला कदम बन गया।

कुछ दिनों बाद उसे एक पुराने आश्रम का उल्लेख मिला, जहाँ कहा जाता था कि एक श्रीश्रीकाल्कि महाऋषि मालोवावा ध्वनि, अक्षर और चेतना के रहस्य का अध्ययन करते हैं। लोग उन्हें केवल संत नहीं, बल्कि चेतना के वैज्ञानिक कहते थे।

रविशंकर ने निर्णय ले लिया।

वह अपनी प्रयोगशाला, नौकरी और सुविधाजनक जीवन को कुछ समय के लिए छोड़कर उस अज्ञात गुरु की खोज में निकल पड़ेगा।

उसे नहीं पता था कि यह यात्रा केवल किसी गुरु तक पहुँचने की नहीं, बल्कि स्वयं के वास्तविक स्वरूप की खोज बनने वाली है।

जैसे ही उसने यात्रा का पहला कदम बढ़ाया, पूर्व दिशा में उगते सूर्य की पहली किरण उसके चेहरे पर पड़ी। उसे लगा मानो प्रकृति स्वयं कह रही हो—

"जब प्रश्न सच्चा होता है, तब उत्तर स्वयं साधक को खोज लेते हैं।"

यहीं से प्रारंभ होती है **ब्रह्म रसायन विद्या** की यात्रा—जहाँ विज्ञान और अध्यात्म विरोधी नहीं, बल्कि एक ही सत्य के दो आयाम हैं।

अध्याय 2 : विज्ञान की सीमाएँ

रविशंकर की यात्रा आरम्भ हो चुकी थी, पर उसके भीतर सबसे बड़ा संघर्ष बाहर की दुनिया से नहीं, स्वयं अपने विचारों से था।

वह विज्ञान का विद्यार्थी था। उसने सीखा था कि प्रत्येक सिद्धांत प्रयोग, प्रमाण और तर्क पर आधारित होना चाहिए। परंतु अब उसके सामने ऐसे प्रश्न खड़े थे जिनका उत्तर प्रयोगशाला के उपकरण नहीं दे पा रहे थे।

उसने ध्वनि की आवृत्तियों पर अनेक प्रयोग किए। पानी की सतह पर बनने वाले ज्यामितीय पैटर्न, कंपन से बदलती संरचनाएँ और विभिन्न ध्वनियों के अलग-अलग प्रभाव उसके सामने थे। लेकिन एक प्रश्न अभी भी अनुत्तरित था—

"यदि ध्वनि पदार्थ को प्रभावित कर सकती है, तो क्या वह चेतना को भी प्रभावित करती है?"

एक दिन उसने अपने वरिष्ठ वैज्ञानिक से यह प्रश्न पूछा।

वैज्ञानिक मुस्कुराए और बोले—

"विज्ञान वही स्वीकार करता है जिसे मापा जा सके। चेतना को अभी पूरी तरह मापा नहीं जा सकता।"

रविशंकर ने उत्तर दिया—

"क्या हर सत्य वही है जिसे आज मापा जा सकता है? या कुछ सत्य ऐसे भी हैं जिन्हें जानने के लिए मनुष्य को स्वयं बदलना पड़ता है?"

उस रात वह देर तक जागता रहा। उसने अपनी डायरी में लिखा—

"विज्ञान प्रकृति के नियमों को खोजता है, लेकिन साधना स्वयं को जानने का मार्ग खोजती है। क्या दोनों का मिलन संभव है?"

कुछ दिनों बाद उसे एक प्राचीन ग्रंथ मिला। उसमें लिखा था—

"यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे।"
अर्थात् जो इस शरीर में है, वही ब्रह्मांड में है।

यह वाक्य उसके मन में गूँजता रहा। यदि मनुष्य स्वयं एक सूक्ष्म ब्रह्मांड है, तो शरीर, मन, प्राण और चेतना का अध्ययन भी विज्ञान का ही एक विस्तार हो सकता है।

धीरे-धीरे उसे यह अनुभव होने लगा कि आधुनिक विज्ञान ने पदार्थ के रहस्यों को बहुत हद तक समझ लिया है, पर अनुभव, आत्मबोध और चेतना के क्षेत्र में अभी भी अनगिनत प्रश्न शेष हैं।

उसी समय उसे एक वृद्ध यात्री मिला। उसने केवल इतना कहा—

"जिस उत्तर की तुम खोज कर रहे हो, वह पुस्तकों में नहीं, अनुभव में मिलेगा।"

यात्री ने उसे एक स्थान का संकेत दिया—एक प्राचीन आश्रम, जहाँ एक श्रीश्रीकाल्कि महाऋषि मालोवावा ध्वनि, श्वास और चेतना के रहस्यों का अभ्यास कराते थे।

रविशंकर ने बिना देर किए उस दिशा में चलना प्रारम्भ कर दिया।

उसे यह नहीं पता था कि अब उसकी यात्रा केवल ज्ञान की नहीं, बल्कि परिवर्तन की यात्रा बनने वाली है।

आकाश में उगते सूर्य की लालिमा के बीच उसने मन ही मन संकल्प लिया—

"मैं सत्य को केवल पढ़ूँगा नहीं, उसे स्वयं अनुभव करूँगा।"

और इसी संकल्प के साथ उसकी खोज का दूसरा चरण प्रारम्भ हुआ।

अध्याय 3 : रहस्यमयी स्वप्न

आश्रम की ओर बढ़ते हुए रविशंकर एक छोटे से गाँव में रात के लिए ठहर गया। दिनभर की यात्रा के बाद उसका शरीर थका हुआ था, लेकिन मन पहले से अधिक जाग्रत था। ऐसा लग रहा था मानो कोई अदृश्य शक्ति उसे लगातार आगे बढ़ने के लिए प्रेरित कर रही हो।

आधी रात के समय उसकी नींद अचानक गहरी हो गई। उसी गहन निद्रा में उसने एक अद्भुत स्वप्न देखा।

उसने स्वयं को एक विशाल, शांत और प्रकाशमय आकाश के बीच खड़ा पाया। चारों ओर न कोई पर्वत था, न पृथ्वी, न कोई परिचित दृश्य। केवल अनंत प्रकाश और सूक्ष्म कंपन।

अचानक उस प्रकाश से एक दिव्य नाद उत्पन्न हुआ—

"ॐ..."

वह ध्वनि केवल सुनाई नहीं दे रही थी, बल्कि उसके पूरे अस्तित्व में प्रवाहित हो रही थी। उसे लगा कि उसके शरीर की प्रत्येक कोशिका उसी लय में स्पंदित हो रही है।

उस प्रकाश के मध्य धीरे-धीरे एक तेजस्वी ऋषि का स्वरूप प्रकट हुआ। उनके मुख पर अपार शांति थी और नेत्रों में करुणा तथा ज्ञान का अथाह सागर।

ऋषि ने बिना होंठ हिलाए कहा—

"ज्ञान केवल पढ़ने से नहीं मिलता, अनुभव से जन्म लेता है।"

रविशंकर ने पूछा,
"गुरुदेव, मैं सत्य की खोज में हूँ। मुझे मार्ग बताइए।"

ऋषि ने अपना दाहिना हाथ उठाया। उसी क्षण प्रकाश से अनेक अक्षर प्रकट हुए। वे अक्षर स्थिर नहीं थे; प्रत्येक अक्षर से प्रकाश, ध्वनि और ऊर्जा की तरंगें निकल रही थीं।

ऋषि बोले—

"अक्षर केवल भाषा नहीं हैं। प्रत्येक अक्षर एक चेतन स्पंदन है। जब साधक शुद्ध मन से उनका अनुभव करता है, तब उसके भीतर परिवर्तन प्रारम्भ होता है।"

रविशंकर ने देखा कि वे सभी अक्षर अंततः एक ही दिव्य बिंदु में विलीन हो गए। उस बिंदु से पुनः वही दिव्य नाद गूँजा—

"ॐ"

फिर ऋषि ने कहा—

"जिसे संसार ध्वनि समझता है, वही सृष्टि का प्रथम स्पंदन है। उसे जानो, उसे जियो, और फिर उसे मानवता तक पहुँचाओ।"

इतना कहते ही प्रकाश अत्यंत प्रखर हो गया। रविशंकर ने अपनी आँखें बंद कर लीं।

अचानक उसकी नींद खुल गई।

भोर हो चुकी थी। पक्षियों का मधुर कलरव वातावरण में गूँज रहा था। परंतु आश्चर्य की बात यह थी कि उसके भीतर वही सूक्ष्म कंपन अभी भी अनुभव हो रहा था, जिसे उसने स्वप्न में महसूस किया था।

उसने तुरंत अपनी डायरी निकाली और स्वप्न का प्रत्येक विवरण लिख डाला। लिखते-लिखते उसकी दृष्टि एक पंक्ति पर ठहर गई—

"क्या यह केवल स्वप्न था, या किसी उच्च चेतना का संदेश?"

उसने आकाश की ओर देखा। पूर्व दिशा में सूर्य उदित हो रहा था। उसके मन में अब कोई संदेह नहीं था।

उसे विश्वास हो गया कि उसकी यात्रा संयोग नहीं, बल्कि एक आह्वान है।

उसने अपना सामान उठाया और उस आश्रम की ओर चल पड़ा, जहाँ शायद उसके सभी प्रश्नों का उत्तर उसकी प्रतीक्षा कर रहा था।

उसे यह ज्ञात नहीं था कि अगले ही चरण में उसका सामना उस गुरु से होने वाला है, जो उसके जीवन की दिशा ही बदल देंगे।

अध्याय 4 : गुरु से प्रथम मिलन

तीन दिनों की कठिन यात्रा के बाद रविशंकर एक घने वन के मध्य स्थित प्राचीन आश्रम के द्वार पर पहुँचा। ऊँचे साल और पीपल के वृक्षों से घिरा वह स्थान अद्भुत शांति से भरा हुआ था। पक्षियों का मधुर कलरव, बहती हुई छोटी नदी की ध्वनि और मंद पवन का स्पर्श वातावरण को दिव्यता प्रदान कर रहे थे।

आश्रम में प्रवेश करते ही उसने देखा कि कुछ साधक मौन भाव से अपने कार्यों में लगे थे। कहीं यज्ञकुण्ड से सुगंधित धुआँ उठ रहा था, कहीं ध्यान चल रहा था, तो कहीं शिष्य वेद-मंत्रों का उच्चारण कर रहे थे। पूरे आश्रम में अनुशासन था, पर उसमें कठोरता नहीं, बल्कि सहजता और करुणा थी।

रविशंकर ने एक वृद्ध शिष्य से विनम्रता से पूछा,
"क्या मैं गुरुदेव से मिल सकता हूँ?"

वृद्ध मुस्कुराए और बोले,
"यदि तुम्हें यहाँ तक किसी ने भेजा है, तो समय आने पर गुरु स्वयं तुम्हें बुलाएँगे।"

यह उत्तर सुनकर रविशंकर आश्चर्य में पड़ गया। उसने तो किसी को अपने आने की सूचना भी नहीं दी थी।

कुछ समय बाद एक युवा शिष्य उसके पास आया और बोला,
"गुरुदेव तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

रविशंकर का हृदय तेज़ी से धड़कने लगा। वह शिष्य के पीछे-पीछे एक साधारण कुटिया तक पहुँचा।

कुटिया के भीतर एक तेजस्वी श्रीश्रीकाल्कि महाऋषि मालोवावा पद्मासन में बैठे थे। उनके चेहरे पर गहन शांति थी, पर उनकी आँखों में ऐसा तेज था मानो वे सीधे मन के भीतर देख रहे हों।

रविशंकर ने श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया।

श्रीश्रीकाल्कि महाऋषि मालोवावा ने मुस्कुराकर कहा,
"रविशंकर, आने में देर तो हुई, पर तुम सही समय पर पहुँचे हो।"

रविशंकर चौंक उठा।

"गुरुदेव... आप मेरा नाम कैसे जानते हैं?"

श्रीश्रीकाल्कि महाऋषि मालोवावा ने शांत स्वर में कहा,
"जिसे खोज सच्चे मन से बुलाती है, उसका परिचय नाम से नहीं, उसके संकल्प से होता है।"

कुछ क्षण मौन छाया रहा।

फिर गुरु ने पूछा,
"तुम क्या खोज रहे हो?"

रविशंकर ने उत्तर दिया,
"मैं जानना चाहता हूँ कि क्या ध्वनि, अक्षर और चेतना के बीच कोई वास्तविक संबंध है? क्या विज्ञान और अध्यात्म एक-दूसरे के पूरक हो सकते हैं?"

गुरु ने पास रखा मिट्टी का एक पात्र उठाया और उसमें भरा जल रविशंकर के सामने रख दिया।

उन्होंने कहा,
"इस जल को देखो।"

रविशंकर देखने लगा।

गुरु ने धीरे से एक मंत्र का उच्चारण किया। कुछ क्षणों तक सब शांत रहा। फिर रविशंकर को ऐसा प्रतीत हुआ कि जल की सतह पर अत्यंत सूक्ष्म वृत्त बनने लगे हैं।

गुरु बोले,
"ध्वनि केवल कानों से नहीं सुनी जाती। उसका प्रभाव पदार्थ, प्राण और मन—तीनों पर पड़ता है। लेकिन इसे समझने के लिए केवल उपकरण नहीं, शुद्ध चेतना भी चाहिए।"

रविशंकर मंत्रमुग्ध होकर सुनता रहा।

श्रीश्रीकाल्कि महाऋषि मालोवावा आगे बोले,
"तुम विज्ञान लेकर आए हो। अच्छा है। पर यहाँ तुम्हें अनुभव भी करना होगा। जब तक ज्ञान अनुभव में नहीं उतरता, वह अधूरा रहता है।"

फिर उन्होंने आश्रम के प्रवेशद्वार की ओर संकेत करते हुए कहा,

"इस आश्रम में प्रवेश करना सरल है, पर ब्रह्म रसायन विद्या के द्वार में प्रवेश तभी होगा, जब तुम अपने अहंकार, पूर्वाग्रह और भय को बाहर छोड़ सको।"

रविशंकर ने सिर झुका दिया।

उसे लगा कि उसकी वास्तविक शिक्षा आज से प्रारम्भ हुई है।

गुरुदेव ने अंत में केवल एक वाक्य कहा—

"कल ब्रह्ममुहूर्त में नदी तट पर आना। पहला पाठ शब्दों से नहीं, मौन से आरम्भ होगा।"

उस रात रविशंकर आश्रम की छोटी-सी कुटिया में लेटा था, पर उसे नींद नहीं आ रही थी। उसके मन में केवल एक ही विचार बार-बार उठ रहा था—

"क्या मौन भी ज्ञान दे सकता है?"

यही प्रश्न उसे अगले प्रभात एक ऐसे अनुभव की ओर ले जाने वाला था, जो उसके जीवन की दिशा बदल देगा।

अध्याय 5 : मौन का पहला पाठ

ब्रह्ममुहूर्त का समय था। पूर्व दिशा में हल्की लालिमा फैल रही थी। आश्रम के चारों ओर ओस की बूँदें घास पर मोतियों की तरह चमक रही थीं। पक्षियों ने अभी अपना कलरव प्रारम्भ नहीं किया था। प्रकृति स्वयं मानो मौन ध्यान में लीन थी।

रविशंकर गुरु के निर्देशानुसार नदी तट पर पहुँचा। वहाँ श्रीश्रीकाल्कि महाऋषि मालोवावा पहले से ही पद्मासन में बैठे थे। बहती हुई नदी की मंद धारा, शीतल हवा और उगते सूर्य का प्रकाश एक अलौकिक वातावरण बना रहे थे।

रविशंकर ने प्रणाम किया।

गुरु ने केवल मुस्कुराकर संकेत किया—

"बैठ जाओ।"

कुछ देर दोनों के बीच पूर्ण मौन रहा।

रविशंकर के मन में अनेक विचार उठने लगे—परिवार, प्रयोगशाला, अधूरे प्रश्न, भविष्य, विज्ञान, स्वप्न और आश्रम। जितना वह मन को शांत करना चाहता, विचार उतनी ही तीव्र गति से आते।

लगभग आधे घंटे बाद गुरु ने धीरे से पूछा—

"क्या सुन रहे हो?"

रविशंकर ने उत्तर दिया,

"गुरुदेव, नदी की ध्वनि... हवा की सरसराहट... दूर किसी पक्षी की आवाज़..."

गुरु ने शांत स्वर में कहा,

"ये बाहर की ध्वनियाँ हैं। अब अपने भीतर सुनो।"

रविशंकर ने आँखें बंद कर लीं।

पहले उसे केवल अपनी साँसों का आना-जाना सुनाई दिया। फिर हृदय की धड़कन। कुछ देर बाद उसे लगा कि शरीर के भीतर भी एक सूक्ष्म लय है—मानो प्रत्येक श्वास किसी अदृश्य संगीत का भाग हो।

गुरु बोले,

"जब मन बाहर से हटकर भीतर की ओर मुड़ता है, तब साधना प्रारम्भ होती है।"

उन्होंने आगे कहा,

"मौन का अर्थ केवल बोलना बंद करना नहीं है। मौन वह अवस्था है, जहाँ विचारों का शोर शांत होने लगता है और चेतना स्वयं को सुनना प्रारम्भ करती है।"

रविशंकर पहली बार इस शिक्षा को अनुभव के रूप में ग्रहण कर रहा था।

गुरु ने उसे एक सरल अभ्यास कराया—

धीरे-धीरे श्वास भीतर लो...
कुछ क्षण स्थिर रहो...
फिर श्वास को सहजता से बाहर छोड़ दो...

यह क्रम कई बार दोहराया गया।

कुछ समय बाद रविशंकर ने अनुभव किया कि उसकी बेचैनी कम हो रही है। विचारों की गति धीमी पड़ने लगी। अचानक कुछ क्षण ऐसे आए जब मन बिल्कुल शांत हो गया।

उसी क्षण उसे फिर वही सूक्ष्म कंपन अनुभव हुआ, जो उसने अपने स्वप्न में सुना था।

बहुत मंद...

बहुत गहरा...

मानो किसी अनंत स्रोत से उठती हुई एक ध्वनि—

"ॐ..."

उसने आँखें खोल दीं।

"गुरुदेव! मैंने कुछ सुना... पर वह कानों से नहीं सुनाई दिया।"

गुरु मुस्कुराए।

"यही तुम्हारा पहला अनुभव है। इसे पकड़ने का प्रयास मत करो। केवल साक्षी बनो। अनुभव को पकड़ने वाला मन है, पर सत्य का दर्शन साक्षी करता है।"

फिर गुरु ने नदी से एक मुट्ठी जल उठाया।

"देखो रविशंकर, यह जल शांत हो तो आकाश का प्रतिबिंब स्पष्ट दिखता है। यदि जल में तरंगें हों, तो प्रतिबिंब टूट जाता है।"

उन्होंने आगे कहा,

"मन भी ऐसा ही है। जब तक उसमें इच्छाओं, भय, क्रोध और अहंकार की तरंगें उठती रहेंगी, तब तक सत्य का प्रतिबिंब स्पष्ट नहीं दिखाई देगा।"

रविशंकर लंबे समय तक उस शांत जल को देखता रहा। उसे लगा मानो गुरु केवल जल की नहीं, उसके अपने मन की बात कर रहे हों।

सूर्य अब पूरी तरह उदित हो चुका था। उसकी स्वर्णिम किरणें नदी की लहरों पर चमक रही थीं।

गुरु ने उठते हुए कहा,

"आज तुमने मौन का द्वार देखा है। कल से तुम **श्वास, ध्वनि और अक्षर** के गहरे संबंध को समझना प्रारम्भ करोगे। वहीं से ब्रह्म रसायन विद्या का वास्तविक अध्ययन आरम्भ होगा।"

रविशंकर ने श्रद्धा से गुरु के चरण स्पर्श किए।

अब उसे विश्वास हो चुका था कि यह यात्रा केवल ज्ञान प्राप्त करने की नहीं, बल्कि स्वयं को रूपांतरित करने की यात्रा है।

अध्याय 6 : श्वास का रहस्य

प्रभात की पहली किरणों ने आश्रम को स्वर्णिम आभा से भर दिया था। पक्षियों का मधुर कलरव वातावरण में गूँज रहा था। रविशंकर नियत समय पर नदी तट पर पहुँचा। गुरुदेव पहले से ही वहाँ ध्यानमग्न बैठे थे।

कुछ क्षणों तक दोनों मौन रहे। फिर गुरुदेव ने अपनी आँखें खोलीं और कहा—

"आज का पाठ श्वास का है। जो श्वास को समझ लेता है, वह अपने जीवन की दिशा बदल सकता है।"

रविशंकर ने उत्सुकता से पूछा,
"गुरुदेव, हम तो जन्म से श्वास लेते आ रहे हैं। इसमें नया क्या है?"

गुरु मुस्कुराए।

"यही सबसे बड़ा रहस्य है। मनुष्य श्वास तो लेता है, पर श्वास को जानता नहीं।"

उन्होंने रविशंकर से कहा—

"अपनी हथेली नाक के सामने रखो और बिना किसी प्रयास के श्वास का स्पर्श महसूस करो।"

रविशंकर ने वैसा ही किया। उसे शीतल वायु भीतर जाती और हल्की गरम वायु बाहर आती महसूस हुई।

गुरुदेव बोले—

"शरीर भोजन से चलता है, लेकिन जीवन का प्रवाह श्वास से बना रहता है। श्वास केवल ऑक्सीजन का आदान-प्रदान नहीं, बल्कि प्राण के प्रवाह का माध्यम भी है।"

रविशंकर ने पूछा,

"क्या प्राण और हवा एक ही हैं?"

गुरुदेव ने उत्तर दिया,

"नहीं। वायु उसका स्थूल रूप है। प्राण वह सूक्ष्म जीवन-शक्ति है, जो शरीर, मन और चेतना को जोड़ती है। जैसे विद्युत दिखाई नहीं देती, पर उसके प्रभाव दिखाई देते हैं; वैसे ही प्राण भी प्रत्यक्ष नहीं दिखता, पर उसका प्रभाव हर जीव में विद्यमान है।"

इसके बाद गुरु उसे एक विशाल बरगद के वृक्ष के पास ले गए।

उन्होंने कहा,

"अपनी पीठ इस वृक्ष से लगाकर आँखें बंद करो।"

कुछ मिनटों तक रविशंकर शांत बैठा रहा। उसे लगा मानो वातावरण पहले से अधिक जीवंत हो गया हो। श्वास गहरी और सहज होने लगी।

गुरुदेव ने पूछा,

"क्या अनुभव हो रहा है?"

रविशंकर बोला,

"ऐसा लग रहा है जैसे भीतर एक नई ताज़गी और स्थिरता आ रही है।"

गुरु ने कहा,

"जब मन शांत होता है, तब साधक प्रकृति के सूक्ष्म स्पंदनों को अनुभव करना प्रारम्भ करता है।"

फिर उन्होंने मिट्टी पर तीन वृत्त बनाए।

पहले वृत्त पर लिखा—**शरीर**।

दूसरे पर—**मन**।

तीसरे पर—**चेतना**।

उन्होंने तीनों को एक रेखा से जोड़ते हुए कहा—

"इन तीनों को जोड़ने वाला सेतु श्वास है।"

रविशंकर ध्यानपूर्वक सुनता रहा।

गुरुदेव ने आगे समझाया—

"जब मन अशांत होता है, श्वास तेज़ हो जाती है। जब भय आता है, श्वास बदल जाती है। जब क्रोध आता है, श्वास का प्रवाह बदल जाता है। और जब प्रेम, करुणा या ध्यान की अवस्था आती है, तब श्वास स्वयं शांत और गहरी हो जाती है।"

रविशंकर को पहली बार अनुभव हुआ कि श्वास केवल शरीर की क्रिया नहीं, बल्कि मन की भाषा भी है।

उस दिन गुरु ने उसे एक सरल अभ्यास दिया—

धीरे-धीरे गिनते हुए चार मात्राओं में श्वास भीतर लेना,
चार मात्राओं तक सहज स्थिर रखना,
फिर चार मात्राओं में श्वास बाहर छोड़ना।

गुरु ने चेतावनी भी दी—

"साधना में कभी बल प्रयोग नहीं करना। श्वास पर अधिकार प्रेम से मिलता है, दबाव से नहीं।"

अभ्यास समाप्त होने के बाद रविशंकर ने अनुभव किया कि उसका मन पहले से अधिक शांत और स्पष्ट है।

गुरुदेव ने आकाश की ओर देखते हुए कहा—

"आज तुमने श्वास को जाना। शीघ्र ही तुम जानोगे कि श्वास से ध्वनि जन्म लेती है, ध्वनि से अक्षर, और अक्षरों से विचारों की दुनिया।"

संध्या को रविशंकर ने अपनी डायरी में लिखा—

"आज पहली बार समझ आया कि जीवन केवल हृदय की धड़कनों से नहीं, बल्कि सजग श्वास से भी बदलता है। यदि श्वास बदलती है, तो मन बदलता है; यदि मन बदलता है, तो जीवन बदल सकता है।"

उसकी खोज अब और गहरी हो चुकी थी। उसे आभास होने लगा था कि ब्रह्म रसायन विद्या का रहस्य केवल पुस्तकों में नहीं, बल्कि प्रत्येक श्वास के बीच के उस सूक्ष्म मौन में छिपा है, जहाँ से चेतना की यात्रा आरम्भ होती है।

अध्याय 7 : नाद का प्रथम अनुभव

प्रातःकाल का समय था। आश्रम की पहाड़ियों पर सूर्य की पहली किरणें पड़ रही थीं। हवा में वनफूलों की सुगंध घुली हुई थी। दूर नदी की कल-कल और पक्षियों का मधुर संगीत वातावरण को जीवंत बना रहा था।

रविशंकर गुरुदेव के पास पहुँचा। आज उनके सामने कोई ग्रंथ नहीं था, कोई यंत्र नहीं था—केवल एक छोटा-सा तंबूरा रखा था।

गुरुदेव ने तंबूरे का एक तार हल्के से छेड़ा।

"न्न्न्न्न..."

ध्वनि धीरे-धीरे पूरे वातावरण में फैल गई। कुछ क्षण बाद वह सुनाई देना बंद हो गई।

गुरुदेव ने पूछा—

"क्या ध्वनि समाप्त हो गई?"

रविशंकर ने कहा,

"जी, अब तो कुछ सुनाई नहीं दे रहा।"

गुरुदेव मुस्कुराए।

"सुनाई नहीं दे रही, इसका अर्थ यह नहीं कि उसका प्रभाव समाप्त हो गया। प्रत्येक ध्वनि अपने पीछे एक सूक्ष्म कंपन छोड़ जाती है।"

उन्होंने भूमि पर दो शब्द लिखे—

आहत नाद
अनाहत नाद

रविशंकर ने पूछा,

"इनका क्या अर्थ है, गुरुदेव?"

गुरुदेव बोले,

"जो ध्वनि दो वस्तुओं के टकराने से उत्पन्न होती है—वह आहत नाद है। जैसे घंटी, वीणा, मृदंग या हमारी वाणी।"

कुछ क्षण रुककर उन्होंने कहा,

"परंतु जो ध्वनि बिना किसी बाहरी आघात के भीतर अनुभव होती है, उसे अनाहत नाद कहते हैं। वही साधना का विषय है।"

रविशंकर ध्यान से सुन रहा था।

गुरुदेव ने उसे एक विशाल वटवृक्ष के नीचे बैठाया।

"आँखें बंद करो। श्वास सहज रखो। किसी ध्वनि को पकड़ने का प्रयास मत करना। केवल साक्षी बने रहो।"

समय बीतता गया।

पहले रविशंकर को हवा की आवाज़ सुनाई दी। फिर पक्षियों का स्वर। फिर नदी की धारा।

धीरे-धीरे बाहरी ध्वनियाँ जैसे दूर होने लगीं।

अचानक उसे अपने भीतर एक अत्यंत सूक्ष्म गूँज का अनुभव हुआ।

वह किसी वाद्य की ध्वनि नहीं थी।

वह किसी शब्द जैसी भी नहीं थी।

फिर भी उसमें एक लय थी...

एक निरंतर प्रवाह...

मानो पूरे अस्तित्व में कोई अदृश्य संगीत बह रहा हो।

उसका मन स्थिर होने लगा। शरीर हल्का महसूस हुआ। समय का बोध भी जैसे क्षीण पड़ गया।

कुछ देर बाद गुरुदेव की मधुर आवाज़ सुनाई दी—

"अब आँखें खोलो।"

रविशंकर ने धीरे-धीरे नेत्र खोले।

उसकी आँखों में आश्चर्य था।

"गुरुदेव... मैंने कुछ सुना। उसे शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकता, पर वह बाहर से नहीं, भीतर से आ रहा था।"

गुरुदेव ने संतोष से कहा,

"तुमने अनाहत नाद की पहली झलक पाई है। यह अभी प्रारंभ है। साधना गहरी होगी तो यह अनुभव भी गहरा होगा।"

फिर उन्होंने तंबूरे की ओर संकेत किया।

"यह वाद्य तुम्हें बाहर की ध्वनि सिखाता है। लेकिन तुम्हारा शरीर स्वयं एक दिव्य वाद्य है। श्वास उसकी वायु है, चेतना उसका संगीत है और आत्मा उसका मौन श्रोता।"

रविशंकर के मन में एक नया प्रश्न उठा।

"यदि प्रत्येक मनुष्य के भीतर यह नाद है, तो फिर अधिकांश लोग उसे क्यों नहीं सुन पाते?"

गुरुदेव ने उत्तर दिया,

"क्योंकि मन का शोर बहुत अधिक है। इच्छाएँ, भय, क्रोध, मोह और अहंकार उस सूक्ष्म नाद को ढँक देते हैं। जब मन निर्मल होता है, तब वही नाद स्पष्ट होने लगता है।"

सूर्य अब आकाश में ऊपर उठ चुका था।

गुरुदेव ने एक सफेद कागज़ पर एक बिंदु बनाया।

फिर उसके चारों ओर अनेक वृत्त खींच दिए।

"यह बिंदु आत्मा है। ये वृत्त विचार, भावनाएँ और अनुभव हैं। साधना का उद्देश्य वृत्तों में उलझना नहीं, बल्कि बिंदु तक पहुँचना है।"

रविशंकर देर तक उस चित्र को देखता रहा।

उसे महसूस हुआ कि उसकी वर्षों की वैज्ञानिक खोज अब एक नए आयाम में प्रवेश कर रही है। प्रयोगशाला के उपकरण उसे पदार्थ का ज्ञान देते थे, पर साधना उसे स्वयं का ज्ञान देने लगी थी।

उस रात उसने अपनी डायरी में लिखा—

"आज पहली बार अनुभव हुआ कि ब्रह्मांड केवल बाहर नहीं है। उसका संगीत मेरे भीतर भी गूँज रहा है। यदि मैं उसे पूरी तरह सुन सका, तो शायद मैं स्वयं को भी जान सकूँ।"

उसकी खोज अब एक साधारण यात्रा नहीं रही थी। वह धीरे-धीरे ब्रह्म रसायन विद्या के उस द्वार के निकट पहुँच रहा था, जहाँ ध्वनि, चेतना और विज्ञान एक-दूसरे में विलीन होने लगते हैं।

अध्याय 8 : ॐ का रहस्य

भोर का समय था। पूर्व दिशा में उगते सूर्य की किरणें आश्रम के प्राचीन मंदिर के शिखर पर पड़ रही थीं। मंदिर के गर्भगृह में एक दीपक शांत लौ के साथ जल रहा था। उसकी ज्योति स्थिर थी, मानो वह स्वयं ध्यान में लीन हो।

गुरुदेव ने रविशंकर को मंदिर के मध्य बैठने का संकेत दिया।

कुछ क्षण पूर्ण मौन रहा।

फिर गुरुदेव ने अत्यंत धीमे, दीर्घ और संतुलित स्वर में उच्चारण किया—

"ॐ..."

मंदिर की दीवारों में वह ध्वनि गूँज उठी। ऐसा लगा मानो प्रत्येक पत्थर, प्रत्येक स्तंभ और प्रत्येक कण उसी कंपन से स्पंदित हो रहा हो।

रविशंकर ने अपनी आँखें बंद कर लीं।

उसे अनुभव हुआ कि ध्वनि बाहर से भीतर प्रवेश कर रही है, फिर भीतर से पूरे शरीर में फैल रही है।

कुछ देर बाद गुरु ने पूछा—

"तुमने क्या अनुभव किया?"

रविशंकर बोला—

"गुरुदेव, ऐसा लगा जैसे यह केवल एक शब्द नहीं था। यह पूरे शरीर में कंपन बनकर फैल गया।"

गुरुदेव ने संतोष से कहा—

"यही कारण है कि 'ॐ' को केवल बोला नहीं जाता, जिया जाता है।"

उन्होंने भूमि पर तीन अक्षर लिखे—

अ — उ — म्

फिर उनके ऊपर एक बिंदु और अर्धचंद्र का चिन्ह बनाया।

गुरुदेव बोले—

"इन तीन ध्वनियों में सम्पूर्ण सृष्टि का प्रतीक छिपा है।"

उन्होंने आगे समझाया—

'अ' — आरंभ, जागृत अवस्था, सृजन और स्थूल जगत का प्रतीक।

'उ' — विस्तार, स्वप्न अवस्था, ऊर्जा और सूक्ष्म जगत का प्रतीक।

'म्' — लय, गहन शांति, सुषुप्ति और कारण अवस्था का प्रतीक।

फिर उन्होंने ऊपर बने बिंदु की ओर संकेत किया।

"और यह बिंदु उस मौन का प्रतीक है, जहाँ ध्वनि समाप्त नहीं होती, बल्कि अपने स्रोत में विलीन हो जाती है।"

रविशंकर ध्यानपूर्वक सुनता रहा।

गुरुदेव ने एक और प्रश्न पूछा—

"क्या तुम्हें पता है कि किसी शब्द के उच्चारण से पहले क्या होता है?"

रविशंकर कुछ सोचकर बोला—

"शायद... मन में विचार उत्पन्न होता है।"

गुरुदेव मुस्कुराए।

"और विचार से भी पहले?"

रविशंकर मौन हो गया।

गुरुदेव बोले—

"वहाँ मौन है। वही मौन सभी ध्वनियों का मूल है।"

इसके बाद उन्होंने रविशंकर को अभ्यास कराया।

पहले गहरी श्वास...

फिर धीमे स्वर में—

अऽऽऽ...

उसके बाद—

उऽऽऽ...

और अंत में—

म्...

ध्वनि समाप्त होने के बाद दोनों कुछ देर तक मौन बैठे रहे।

रविशंकर ने अनुभव किया कि ध्वनि समाप्त हो चुकी थी, पर उसके भीतर एक सूक्ष्म कंपन अब भी बना हुआ था।

उसे लगा मानो उसके विचारों की गति धीमी हो गई हो।

गुरुदेव ने कहा—

"साधक को ध्वनि से अधिक उस मौन को पहचानना चाहिए, जो ध्वनि के बाद प्रकट होता है। वही ब्रह्म रसायन विद्या का प्रथम द्वार है।"

रविशंकर ने पूछा—

"क्या यही कारण है कि अनेक ऋषियों ने 'ॐ' को सर्वोच्च मंत्र कहा है?"

गुरुदेव ने उत्तर दिया—

"ऋषियों ने किसी विश्वास के कारण नहीं, बल्कि अनुभव के कारण ऐसा कहा। उन्होंने पहले साधना की, फिर सत्य को जाना।"

संध्या समय रविशंकर आश्रम के पीछे स्थित पहाड़ी पर अकेला बैठा था।

उसने कई बार "ॐ" का जप किया।

हर बार उसे लगा कि ध्वनि अलग नहीं है; बदलने वाला उसका अपना मन है।

उसने अपनी डायरी में लिखा—

"आज समझ आया कि 'ॐ केवल एक मंत्र नहीं, बल्कि एक अनुभव का द्वार है। शब्द समाप्त हो जाता है, पर उसका मौन भीतर जीवित रहता है। शायद वहीं से चेतना की वास्तविक यात्रा आरम्भ होती है।"

रात के आकाश में अनगिनत तारे चमक रहे थे।

रविशंकर उन्हें देख रहा था, लेकिन पहली बार उसे लगा कि जितना विशाल ब्रह्मांड बाहर है, उतना ही विशाल एक ब्रह्मांड उसके भीतर भी विद्यमान है।

उसे अभी यह ज्ञात नहीं था कि अगले ही दिन गुरुदेव उसे **अक्षरों की ऊर्जा** का ऐसा रहस्य बताएँगे, जो उसकी विज्ञान की समझ को एक नए आयाम में ले जाएगा।

अध्याय 9 : अक्षरों की ऊर्जा

अगली सुबह आश्रम के अध्ययन-मंडप में एक विशेष सभा आयोजित की गई थी। मंडप के मध्य भूमि पर संस्कृत वर्णमाला बड़े सुंदर ढंग से अंकित थी। चारों ओर दीपक जल रहे थे और वातावरण में चंदन तथा हवन की सुगंध व्याप्त थी।

रविशंकर ने पहली बार देखा कि गुरुदेव के सामने कोई धार्मिक ग्रंथ नहीं, बल्कि ताड़पत्र, ध्वनि-रेखाओं के चित्र और मानव शरीर का एक विस्तृत रेखाचित्र रखा था।

उसके मन में उत्सुकता जागी।

गुरुदेव ने कहा—

"आज हम शब्द नहीं, अक्षरों का अध्ययन करेंगे। क्योंकि शब्द अनेक हो सकते हैं, पर प्रत्येक शब्द की जड़ अक्षर है।"

उन्होंने भूमि पर लिखा—

अ

फिर बोले—

"यह केवल भाषा का पहला अक्षर नहीं है। यह उद्घाटन का प्रतीक है। जब शिशु जन्म लेता है, तो उसकी पहली ध्वनि प्रायः खुली होती है। यही कारण है कि 'अ' को अनेक भाषाओं में मूल स्वर माना गया है।"

इसके बाद उन्होंने क्रमशः **आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ** का उच्चारण कराया।

रविशंकर ने अनुभव किया कि प्रत्येक स्वर का कंपन अलग था। कुछ ध्वनियाँ छाती में गूँजती थीं, कुछ कंठ में, कुछ मुखगुहा में और कुछ सिर के भीतर सूक्ष्म कंपन का अनुभव कराती थीं।

गुरुदेव बोले—

"साधक के लिए प्रत्येक अक्षर केवल उच्चारण नहीं, एक अनुभव है।"

फिर उन्होंने व्यंजनों की ओर संकेत किया।

क, ख, ग, घ, ङ...

उन्होंने समझाया—

"देखो, प्रत्येक वर्ग का उच्चारण मुख के अलग-अलग स्थानों से होता है। कण्ठ, तालु, मूर्धा, दंत और ओष्ठ—यह व्यवस्था केवल व्याकरण नहीं, ध्वनि-विज्ञान की भी अद्भुत रचना है।"

रविशंकर ने आश्चर्य से पूछा—

"तो क्या हमारे ऋषियों ने ध्वनि के इन स्थानों का अनुभव साधना से किया था?"

गुरुदेव ने उत्तर दिया—

"उन्होंने शरीर को प्रयोगशाला बनाया और चेतना को उपकरण।"

इसके बाद गुरुदेव ने एक धातु की थाली पर सूक्ष्म रेत बिखेरी।

उन्होंने एक विशेष ध्वनि का उच्चारण किया।

रेत के कणों ने धीरे-धीरे एक सुंदर ज्यामितीय आकृति बना ली।

रविशंकर विस्मित रह गया।

"यह कैसे संभव है?"

गुरुदेव बोले—

"कंपन पदार्थ को व्यवस्थित भी कर सकता है और अव्यवस्थित भी। यही सिद्धांत मन पर भी लागू होता है।"

फिर उन्होंने आगे कहा—

"जब मनुष्य बार-बार क्रोध, भय और कटु शब्दों का प्रयोग करता है, तो उसके भीतर भी अव्यवस्था बढ़ती है। जब वह प्रेम, करुणा और सत्य से भरे शब्द बोलता है, तो भीतर संतुलन उत्पन्न होता है।"

रविशंकर को अपने जीवन की अनेक घटनाएँ याद आने लगीं।

उसे लगा कि शब्द वास्तव में केवल संवाद का माध्यम नहीं, बल्कि चेतना को दिशा देने वाली शक्ति भी हैं।

सभा के अंत में गुरुदेव ने सभी शिष्यों से एक ही अक्षर का जप कराया—

"**हं...**"

पूरा मंडप उस ध्वनि से भर गया।

रविशंकर ने अनुभव किया कि सामूहिक जप का प्रभाव अकेले जप से भिन्न था। मानो अनेक दीपकों का प्रकाश मिलकर एक बड़ा प्रकाश बन गया हो।

गुरुदेव ने कहा—

"जब अनेक मन एक शुभ संकल्प के साथ एक ही ध्वनि में जुड़ते हैं, तो सामूहिक चेतना का निर्माण होता है।"

संध्या समय रविशंकर अपनी डायरी में लिख रहा था—

"आज मैंने जाना कि वर्णमाला केवल भाषा की सीढ़ी नहीं है। प्रत्येक अक्षर एक कंपन है, प्रत्येक कंपन एक ऊर्जा है, और प्रत्येक ऊर्जा चेतना को प्रभावित कर सकती है। यदि अक्षरों का सही उपयोग किया जाए, तो वे मनुष्य के भीतर परिवर्तन का माध्यम बन सकते हैं।"

उसने अपनी डायरी बंद की और आकाश की ओर देखा।

उसे अब स्पष्ट होने लगा था कि **ब्रह्म रसायन विद्या** केवल रसायन विज्ञान या अध्यात्म का अध्ययन नहीं, बल्कि ध्वनि, ऊर्जा, मन और चेतना के गहरे संबंध की खोज है।

और उसकी यह खोज अब उसे एक ऐसे रहस्य के द्वार तक ले जाने वाली थी, जहाँ गुरु पहली बार "**ब्रह्म रसायन विद्या**" के वास्तविक उद्देश्य का उद्घाटन करेंगे।

अध्याय 10 : ब्रह्म रसायन विद्या का प्रथम द्वार

पूर्णिमा की रात थी।

आश्रम के चारों ओर चाँदनी दूध की धारा की तरह बिखरी हुई थी। वृक्षों की छाया भूमि पर शांत आकृतियाँ बना रही थी। नदी का जल चंद्रमा के प्रकाश को अपने भीतर समेटे हुए था।

गुरुदेव ने सभी शिष्यों को आश्रम के प्राचीन ध्यान-मंडप में एकत्र होने का संदेश दिया।

रविशंकर के मन में उत्सुकता थी। पिछले कई दिनों से वह ध्वनि, श्वास, मौन, नाद और अक्षरों के रहस्य सीख रहा था, पर उसे लगता था कि यह सब किसी बड़े ज्ञान की भूमिका है।

मध्य में एक दीपक जल रहा था।

गुरुदेव ने उस दीपक की लौ की ओर संकेत करते हुए कहा—

"यह दीपक ब्रह्म रसायन विद्या का पहला प्रतीक है।"

रविशंकर ने पूछा,
"गुरुदेव, कैसे?"

गुरुदेव बोले—

"दीपक में तीन बातें हैं—पात्र, तेल और ज्योति। यदि इनमें से एक भी न हो, तो प्रकाश नहीं होगा। इसी प्रकार मनुष्य में शरीर, प्राण और चेतना का संतुलन ही ज्ञान का प्रकाश उत्पन्न करता है।"

फिर उन्होंने भूमि पर एक त्रिभुज बनाया।

पहले कोने पर लिखा—

शरीर

दूसरे पर—

मन

तीसरे पर—

चेतना

त्रिभुज के मध्य उन्होंने लिखा—

ब्रह्म

गुरुदेव बोले—

"जब शरीर शुद्ध हो, मन शांत हो और चेतना जागृत हो, तब साधक अपने भीतर स्थित ब्रह्म का अनुभव करना प्रारम्भ करता है। यही ब्रह्म रसायन विद्या का प्रथम द्वार है।"

रविशंकर गहन ध्यान से सुन रहा था।

गुरुदेव ने आगे कहा—

"तुमने अब तक ध्वनि का अभ्यास किया, श्वास का अनुभव किया, मौन को जाना और अक्षरों की ऊर्जा को समझा। लेकिन यह सब साधन हैं, साध्य नहीं।"

उन्होंने सभी शिष्यों से अपनी आँखें बंद करने को कहा।

कुछ क्षण बाद पूरा मंडप मौन हो गया।

गुरुदेव की आवाज़ उस मौन में धीरे-धीरे गूँजी—

"अपने शरीर को देखो...
अपने विचारों को देखो...
अपनी भावनाओं को देखो...
और फिर उस देखने वाले को पहचानो।"

रविशंकर ने पहली बार अपने विचारों को रोकने का प्रयास नहीं किया।

वह केवल उन्हें देखता रहा।

विचार आते...

और चले जाते...

भावनाएँ उठतीं...

और शांत हो जातीं...

लेकिन एक साक्षी था जो सबको देख रहा था।

उस क्षण उसके भीतर एक गहरी शांति उतर आई।

उसे ऐसा लगा जैसे उसके वर्षों पुराने प्रश्न धीरे-धीरे अपना भार खो रहे हों।

कुछ देर बाद गुरुदेव ने एक छोटा-सा क्रिस्टल उसके हाथ में रखा।

उन्होंने कहा—

"यह क्रिस्टल अपने पास रखो। इसकी शक्ति पत्थर में नहीं, तुम्हारी स्मृति में है। जब भी तुम्हारा मन भटके, इसे देखकर याद करना कि तुम्हारा वास्तविक लक्ष्य बाहर नहीं, भीतर है।"

फिर गुरुदेव ने पहली बार "ब्रह्म रसायन विद्या" का अर्थ स्पष्ट किया—

"ब्रह्म रसायन विद्या वह ज्ञान है जो मनुष्य के भीतर होने वाले सूक्ष्म परिवर्तनों का अध्ययन करती है। यह केवल शरीर की रासायनिक प्रक्रियाओं की नहीं, बल्कि विचारों, शब्दों, श्वास, प्राण, भावनाओं और चेतना के पारस्परिक संबंध की विद्या है। इसका उद्देश्य चमत्कार नहीं, चरित्र का रूपांतरण है; शक्ति नहीं, शुद्धता है; ज्ञान का संग्रह नहीं, ज्ञान का अनुभव है।"

रविशंकर की आँखें नम हो गईं।

उसे लगा कि उसकी वर्षों की खोज को पहली बार दिशा मिली है।

गुरुदेव ने अंत में कहा—

"आज तुमने केवल प्रथम द्वार पार किया है। आगे की यात्रा अधिक कठिन होगी। तुम्हें अपने भय, अहंकार, मोह और भ्रम से भी मिलना होगा। जो स्वयं पर विजय प्राप्त करता है, वही वास्तविक साधक बनता है।"

रात्रि गहराने लगी।

आकाश में पूर्णिमा का चंद्रमा शांत प्रकाश बिखेर रहा था।

रविशंकर आश्रम के प्रांगण में अकेला खड़ा था। उसने गहरी श्वास ली और ऊपर देखा।

अब उसके भीतर प्रश्न कम थे, संकल्प अधिक था।

उसने अपनी डायरी के अंतिम पृष्ठ पर लिखा—

"खोज समाप्त नहीं हुई है। आज तो केवल द्वार खुला है। अब आरम्भ होगी साधना की वास्तविक यात्रा, जहाँ प्रत्येक दिन स्वयं को जानने का एक नया अवसर होगा।"

उसी क्षण आश्रम की घंटी बजी।

मानो वह केवल एक घंटे की ध्वनि न होकर, उसके जीवन के नए अध्याय की घोषणा कर रही हो।

यहीं पर "भाग 1 – खोज" पूर्ण होता है।

भाग 2 – साधना

अध्याय 11 : साधना का संकल्प

पूर्णिमा की रात बीत चुकी थी। अगली सुबह आश्रम में एक नई ऊर्जा थी। उगते सूर्य की किरणें वृक्षों के पत्तों से छनकर भूमि पर पड़ रही थीं। वातावरण में शंखध्वनि और पक्षियों का मधुर स्वर एक साथ गूँज रहे थे।

रविशंकर ब्रह्ममुहूर्त में ही जाग गया। उसने अनुभव किया कि अब उसके भीतर पहले जैसी बेचैनी नहीं थी। प्रश्न अभी भी थे, पर अब वे उसे विचलित नहीं कर रहे थे। उनके स्थान पर एक गहरी जिज्ञासा और दृढ़ निश्चय जन्म ले चुका था।

स्नान और प्रार्थना के बाद वह गुरुदेव की कुटिया में पहुँचा।

गुरुदेव ध्यान से उठे और बोले—

"रविशंकर, खोज करने वाला व्यक्ति सत्य का द्वार देख सकता है, पर उस द्वार से भीतर केवल साधक ही प्रवेश करता है।"

रविशंकर ने विनम्रता से पूछा—

"गुरुदेव, क्या मैं उस मार्ग पर चलने के योग्य हूँ?"

गुरुदेव ने उत्तर दिया—

"योग्यता जन्म से नहीं आती। वह अनुशासन, धैर्य और निरंतर अभ्यास से विकसित होती है।"

उन्होंने आश्रम के मध्य स्थित एक विशाल वटवृक्ष की ओर संकेत किया।

"इस वृक्ष को देखो। क्या यह एक दिन में इतना विशाल हुआ है?"

"नहीं गुरुदेव," रविशंकर ने उत्तर दिया।

"इसी प्रकार साधना भी एक दिन का अनुभव नहीं है। यह प्रतिदिन स्वयं को थोड़ा-थोड़ा रूपांतरित करने की प्रक्रिया है।"

गुरुदेव उसे आश्रम के एक शांत प्रांगण में ले गए। वहाँ पत्थर की एक पट्टिका पर पाँच शब्द अंकित थे—

- **सत्य**
- **अनुशासन**
- **सेवा**
- **मौन**
- **स्वाध्याय**

गुरुदेव बोले—

"यही ब्रह्म रसायन विद्या के पाँच आधार हैं। यदि इनमें से एक भी दुर्बल होगा, तो साधना असंतुलित हो जाएगी।"

रविशंकर ने उन शब्दों को ध्यान से पढ़ा।

गुरुदेव ने आगे कहा—

"आज से तुम्हारा दिन चार भागों में विभाजित होगा।

प्रथम—शरीर का अभ्यास।

द्वितीय—श्वास और ध्यान।

तृतीय—ज्ञान और स्वाध्याय।

चतुर्थ—सेवा और आत्मचिंतन।"

रविशंकर ने पूछा—

"गुरुदेव, सेवा भी साधना का भाग क्यों है?"

गुरुदेव मुस्कुराए।

"जो ज्ञान केवल अपने लिए है, वह अधूरा है। जब ज्ञान करुणा बनकर दूसरों के जीवन में उतरता है, तभी वह पूर्ण होता है।"

उसी समय आश्रम के कुछ शिष्य औषधीय पौधों की देखभाल कर रहे थे। कुछ रसोई में भोजन बना रहे थे। कुछ वृद्ध साधकों की सेवा कर रहे थे।

रविशंकर ने अनुभव किया कि यहाँ कोई कार्य छोटा या बड़ा नहीं था।

गुरुदेव ने कहा—

"अहंकार कहता है—'मैं क्या बनूँ?'

साधना पूछती है—'मैं क्या बन रहा हूँ?'"

यह वाक्य रविशंकर के हृदय में गहराई तक उतर गया।

संध्या समय सभी शिष्य अग्निकुंड के चारों ओर एकत्र हुए।

गुरुदेव ने प्रत्येक शिष्य से एक संकल्प लेने को कहा।

जब रविशंकर की बारी आई, तो उसने दोनों हाथ जोड़कर कहा—

"मैं सत्य की खोज केवल ज्ञान के लिए नहीं, बल्कि आत्मपरिवर्तन और लोककल्याण के लिए करूँगा। मैं अपने विचार, वाणी और कर्म को शुद्ध बनाने का निरंतर प्रयास करूँगा।"

गुरुदेव ने प्रसन्न होकर उसके मस्तक पर हाथ रखा और कहा—

"आज से तुम्हारी साधना आरम्भ हुई। याद रखो—साधना का सबसे बड़ा शत्रु बाहरी संसार नहीं, भीतर का अहंकार और आलस्य है।"

रात्रि में रविशंकर अपनी कुटिया में लौटा।

उसने अपनी डायरी खोली और लिखा—

"आज मुझे समझ आया कि साधना केवल ध्यान में बैठने का नाम नहीं है। साधना का अर्थ है—हर श्वास में सजगता, हर शब्द में सत्य, हर कर्म में करुणा और हर दिन स्वयं को कल से बेहतर बनाना।"

उसने दीपक बुझाया।

कुटिया में अंधकार था, पर उसके भीतर एक नया प्रकाश जल चुका था।

उसे नहीं मालूम था कि अगली भोर उसकी पहली वास्तविक परीक्षा लेकर आने वाली है—**मन की चंचलता से सामना**, जहाँ वह सीखेगा कि साधना का सबसे कठिन युद्ध बाहर नहीं, भीतर लड़ा जाता है।

अध्याय 12 : मन का दर्पण

ब्रह्ममुहूर्त का समय था। आश्रम के प्रांगण में शांति पसरी हुई थी। आकाश में तारों की अंतिम चमक धीरे-धीरे विलीन हो रही थी। रविशंकर ने स्नान किया, प्रार्थना की और ध्यान-मंडप की ओर चल पड़ा।

आज गुरुदेव ने उसे किसी नदी, किसी वृक्ष या किसी ग्रंथ के पास नहीं बुलाया था। वे उसे आश्रम के पीछे स्थित एक प्राचीन गुफा में ले गए।

गुफा के भीतर एक छोटा-सा दीपक जल रहा था। उसकी लौ स्थिर थी। वहाँ न कोई चित्र था, न कोई मूर्ति—केवल मौन।

गुरुदेव ने कहा—

"आज तुम अपने सबसे बड़े मित्र और सबसे बड़े शत्रु से मिलोगे।"

रविशंकर ने आश्चर्य से पूछा—

"गुरुदेव, कौन?"

गुरु ने उसकी ओर देखकर उत्तर दिया—

"तुम्हारा अपना मन।"

दोनों ध्यान में बैठ गए।

कुछ ही क्षणों में रविशंकर के मन में विचारों का प्रवाह आरम्भ हो गया। बचपन की स्मृतियाँ, माता-पिता का स्नेह, अधूरी इच्छाएँ, प्रयोगशाला, भविष्य की कल्पनाएँ, आश्रम का जीवन—सब एक-एक कर सामने आने लगे।

उसने उन्हें रोकने का प्रयास किया।

विचार और तेज़ हो गए।

कुछ देर बाद वह बेचैन होकर बोला—

"गुरुदेव! मेरा मन बिल्कुल शांत नहीं होता। जितना रोकता हूँ, उतना ही भागता है।"

गुरुदेव मुस्कुराए।

उन्होंने पास रखे मिट्टी के पात्र में जल भरा और उसमें एक मुट्ठी रेत डाल दी।

जल तुरंत मटमैला हो गया।

गुरुदेव बोले—

"यदि मैं इस पात्र को बार-बार हिलाता रहूँ, तो क्या जल साफ़ होगा?"

"नहीं," रविशंकर ने उत्तर दिया।

"तो क्या करना होगा?"

"उसे कुछ समय स्थिर छोड़ना होगा।"

गुरुदेव ने कहा—

"मन भी ऐसा ही है। विचारों से लड़ोगे तो वे और उठेंगे। उन्हें केवल देखने का अभ्यास करो। जब मन को बिना प्रतिक्रिया के देखा जाता है, तो वह स्वयं शांत होने लगता है।"

यह सुनकर रविशंकर पुनः ध्यान में बैठ गया।

इस बार उसने विचारों को रोकने का प्रयास नहीं किया।

वह केवल उन्हें देखता रहा।

एक विचार आया...

फिर चला गया।

दूसरा आया...

वह भी चला गया।

धीरे-धीरे उसने अनुभव किया कि विचार बदलते रहते हैं, पर उन्हें देखने वाला साक्षी स्थिर है।

ध्यान समाप्त होने पर गुरु ने पूछा—

"आज क्या देखा?"

रविशंकर ने उत्तर दिया—

"गुरुदेव, पहले मुझे लगता था कि मैं ही मेरे विचार हूँ। आज पहली बार लगा कि विचार अलग हैं और मैं उन्हें देखने वाला कुछ और हूँ।"

गुरुदेव के चेहरे पर संतोष झलक उठा।

उन्होंने कहा—

"यही आत्मनिरीक्षण का आरम्भ है। जब साधक यह जान लेता है कि वह विचार नहीं, विचारों का साक्षी है, तभी वास्तविक स्वतंत्रता की शुरुआत होती है।"

इसके बाद गुरु उसे आश्रम के बाहर एक शांत झील के किनारे ले गए।

झील का जल बिल्कुल स्थिर था।

उसमें आकाश, वृक्ष और पर्वत का प्रतिबिंब स्पष्ट दिखाई दे रहा था।

गुरुदेव बोले—

"यह झील तुम्हारे मन का दर्पण है। जब मन शांत होता है, तब सत्य का प्रतिबिंब स्पष्ट दिखाई देता है। जब मन अशांत होता है, तब वास्तविकता भी विकृत दिखाई देती है।"

रविशंकर लंबे समय तक उस शांत जल को देखता रहा।

उसे समझ आने लगा कि बाहरी संसार को बदलने से पहले अपने मन को समझना आवश्यक है।

संध्या को गुरु ने उसे एक अभ्यास दिया।

उन्होंने कहा—

"आज से प्रत्येक रात सोने से पहले तीन प्रश्न अपनी डायरी में लिखना—

1. आज मैंने क्या सीखा?
2. आज मैंने कहाँ असावधानी की?
3. कल मैं स्वयं को किस प्रकार बेहतर बनाऊँगा?"

"इन्हीं तीन प्रश्नों से तुम्हारा मन धीरे-धीरे तुम्हारा गुरु बन जाएगा।"

उस रात रविशंकर ने अपनी डायरी में लिखा—

"मन को जीतना युद्ध जीतने से कठिन है। पर आज मैंने जाना कि मन को हराना नहीं, समझना है। जब मैं अपने विचारों का साक्षी बनता हूँ, तभी भीतर शांति जन्म लेती है।"

कुटिया के बाहर चंद्रमा की शीतल रोशनी फैली हुई थी।

रविशंकर ने आकाश की ओर देखा।

उसे महसूस हुआ कि उसकी साधना अब केवल श्वास या ध्वनि तक सीमित नहीं रही।

अब उसकी यात्रा उसके अपने मन की गहराइयों में प्रवेश कर चुकी थी।

और वहीं से प्रारम्भ होने वाला था **ब्रह्म रसायन विद्या** का अगला रहस्य—**भावनाओं का रसायन**, जहाँ वह सीखेगा कि प्रेम, क्रोध, भय, करुणा और विश्वास केवल भावनाएँ नहीं, बल्कि मनुष्य के भीतर होने वाले सूक्ष्म परिवर्तन की शक्तियाँ हैं।

अध्याय 13 : भावनाओं का रसायन

प्रातःकाल की सुनहरी किरणें आश्रम के औषधि-उद्यान पर बिखर रही थीं। सैकड़ों औषधीय पौधों की सुगंध वातावरण को पवित्र बना रही थी। तुलसी, अश्वगंधा, ब्राह्मी, शतावरी और अनेक दुर्लभ वनस्पतियाँ सुव्यवस्थित कतारों में लगी थीं।

गुरुदेव ने रविशंकर को वहीं बुलाया।

उन्होंने एक हरी-भरी तुलसी का पौधा और उसके पास पड़ा एक सूखा पौधा दिखाया।

उन्होंने पूछा—

"रविशंकर, इन दोनों में अंतर क्या है?"

रविशंकर ने उत्तर दिया—

"एक जीवंत है, दूसरा सूख चुका है।"

गुरुदेव बोले—

"जिस प्रकार पौधे जल, प्रकाश और पोषण से जीवित रहते हैं, उसी प्रकार मनुष्य का मन भी भावनाओं से पोषित होता है। भावनाएँ केवल मन की कल्पना नहीं हैं; वे शरीर, विचार और जीवन की दिशा को प्रभावित करती हैं।"

रविशंकर ध्यान से सुन रहा था।

गुरुदेव उसे आश्रम की चिकित्साशाला में ले गए। वहाँ एक वृद्ध वैद्य औषधियाँ तैयार कर रहे थे।

गुरुदेव ने कहा—

"यदि किसी व्यक्ति को लगातार भय, क्रोध या चिंता बनी रहे, तो उसके शरीर पर भी प्रभाव पड़ता है। यदि उसके भीतर आशा, प्रेम और संतुलन हो, तो स्वास्थ्य पर भी उसका सकारात्मक प्रभाव दिखाई देता है।"

रविशंकर ने अपने रसायन विज्ञान के अध्ययन को याद किया। उसे समझ आया कि मन और शरीर एक-दूसरे से अलग नहीं हैं।

गुरुदेव ने मिट्टी के दो पात्र सामने रखे।

पहले पात्र में स्वच्छ जल था।

दूसरे में वही जल था, पर उसमें मिट्टी मिलाकर उसे मटमैला कर दिया गया था।

उन्होंने कहा—

"जल वही है, पर उसकी अवस्था बदल गई। इसी प्रकार मनुष्य का मूल स्वरूप निर्मल है, किंतु नकारात्मक भावनाएँ उसे धुँधला कर देती हैं।"

रविशंकर ने पूछा—

"क्या क्रोध और भय को पूरी तरह समाप्त किया जा सकता है?"

गुरुदेव मुस्कुराए।

"भावनाओं को दबाने से वे समाप्त नहीं होतीं। उन्हें समझने, स्वीकारने और सही दिशा देने से उनका रूपांतरण होता है।"

उन्होंने आगे कहा—

"अग्नि भोजन भी पकाती है और वन भी जला सकती है। दोष अग्नि का नहीं, उसके उपयोग का है। उसी प्रकार क्रोध अन्याय के विरुद्ध साहस भी बन सकता है, और अहंकार का विनाशक भी।"

उस दिन गुरुदेव ने सभी शिष्यों को एक विशेष अभ्यास कराया।

प्रत्येक शिष्य से कहा गया कि वह अपनी सबसे बड़ी कमजोरी एक पत्ते पर लिखे।

किसी ने लिखा—भय।

किसी ने लिखा—क्रोध।

किसी ने लिखा—ईर्ष्या।

रविशंकर ने लिखा—

"अहंकार और स्वयं को सिद्ध करने की इच्छा।"

गुरुदेव ने सभी पत्तों को अग्नि में अर्पित करते हुए कहा—

"यह कोई जादू नहीं है। यह केवल एक संकल्प है कि हम अपनी कमजोरियों को पहचानते हैं और उन्हें बदलने का प्रयास करेंगे।"

रविशंकर ने अनुभव किया कि कमजोरी स्वीकार करना भी एक प्रकार का साहस है।

संध्या को गुरुदेव उसे आश्रम की पहाड़ी पर ले गए।

सूर्य अस्त होने वाला था।

आकाश लाल, नारंगी और सुनहरे रंगों से भर गया था।

गुरुदेव बोले—

"प्रकृति हमें प्रतिदिन सिखाती है कि परिवर्तन ही जीवन का नियम है। दिन रात में बदलता है, ऋतु बदलती है, बीज वृक्ष बनता है। यदि प्रकृति बदल सकती है, तो मनुष्य की भावनाएँ भी बदल सकती हैं।"

रविशंकर ने धीरे से पूछा—

"तो क्या प्रेम सबसे बड़ी शक्ति है?"

गुरुदेव ने उत्तर दिया—

"प्रेम वह अवस्था है जिसमें अहंकार कम हो जाता है और करुणा बढ़ जाती है। जहाँ करुणा है, वहाँ परिवर्तन सहज हो जाता है।"

रात को अपनी डायरी में रविशंकर ने लिखा—

"आज मैंने जाना कि भावनाएँ शत्रु नहीं हैं। वे ऊर्जा हैं। यदि उन्हें समझा जाए, तो वे चेतना को ऊपर उठाती हैं; यदि उन्हें अनदेखा किया जाए, तो वही ऊर्जा मनुष्य को भीतर से तोड़ देती है। ब्रह्म रसायन विद्या का वास्तविक प्रयोगशाला मेरा अपना मन है।"

उसने दीपक बुझाया और कुछ देर तक मौन बैठा रहा।

आज पहली बार उसे लगा कि साधना केवल ध्यान की प्रक्रिया नहीं, बल्कि अपने प्रत्येक विचार, प्रत्येक भावना और प्रत्येक प्रतिक्रिया को समझने की कला है।

उसे अभी यह नहीं पता था कि अगले दिन गुरुदेव उसे **मंत्र और चेतना** के उस रहस्य से परिचित कराने वाले हैं, जहाँ ध्वनि केवल सुनी नहीं जाती, बल्कि जीवन को रूपांतरित करने वाली शक्ति बन जाती है।

अध्याय 14 : मंत्र और चेतना का विज्ञान

अगली भोर आश्रम में एक विशेष साधना का दिन था। पूर्व दिशा से आती सूर्य की कोमल किरणें ध्यान-मंडप के खुले प्रांगण में फैल रही थीं। सभी शिष्य मौन होकर अपने-अपने आसनों पर बैठ चुके थे।

रविशंकर भी गुरु के सामने पद्मासन में बैठ गया।

गुरुदेव ने आज कोई उपदेश नहीं दिया। उन्होंने केवल एक ताम्रपात्र में भरा जल सामने रखा और शांत स्वर में कहा—

"आज हम ध्वनि नहीं, मंत्र का अनुभव करेंगे।"

कुछ क्षणों तक पूरा वातावरण मौन रहा।

फिर गुरुदेव ने धीरे-धीरे एक वैदिक मंत्र का उच्चारण आरम्भ किया। उनके स्वर में न कोई प्रदर्शन था, न कोई आडंबर। प्रत्येक अक्षर स्पष्ट, संतुलित और लयबद्ध था।

मंत्र समाप्त हुआ, पर उसका प्रभाव वातावरण में जैसे बना रहा।

गुरुदेव ने पूछा—

"रविशंकर, तुम्हें क्या अनुभव हुआ?"

रविशंकर ने उत्तर दिया—

"गुरुदेव, ऐसा लगा जैसे मंत्र केवल कानों तक नहीं पहुँचा। उसकी लय ने मन को भी शांत कर दिया।"

गुरुदेव मुस्कुराए।

"यही मंत्र की पहली पहचान है। मंत्र का उद्देश्य केवल शब्दों का उच्चारण नहीं, बल्कि चेतना को एक दिशा देना है।"

उन्होंने भूमि पर तीन वृत्त बनाए।

पहले वृत्त पर लिखा—

ध्वनि

दूसरे पर—

भाव

तीसरे पर—

चेतना

फिर तीनों को जोड़ते हुए बोले—

"जब ध्वनि शुद्ध हो, भाव निर्मल हो और चेतना सजग हो, तब मंत्र जीवंत हो जाता है।"

रविशंकर ने पूछा—

"क्या केवल मंत्र बोलने से परिवर्तन हो जाता है?"

गुरुदेव ने सिर हिलाया।

"नहीं। यदि मन कहीं और हो और वाणी कहीं और, तो मंत्र केवल शब्द रह जाता है। मंत्र तभी प्रभावी होता है, जब वाणी, मन और संकल्प एक हो जाएँ।"

इसके बाद गुरु उसे आश्रम के पीछे स्थित गुफा में ले गए।

वहाँ उन्होंने एक दीपक जलाया और कहा—

"इस दीपक की लौ को बिना पलक झपकाए देखो।"

कुछ देर बाद उन्होंने आँखें बंद करने का संकेत दिया।

रविशंकर ने आश्चर्य से देखा कि दीपक की छवि उसके भीतर भी दिखाई दे रही थी।

गुरुदेव बोले—

"जिस प्रकार एक दृश्य भीतर अंकित हो सकता है, उसी प्रकार एक मंत्र भी चेतना में अंकित हो सकता है। बार-बार सजग अभ्यास से वह तुम्हारे विचारों, भावनाओं और आचरण को प्रभावित करने लगता है।"

फिर उन्होंने कहा—

"मंत्र का अर्थ केवल पवित्र शब्द नहीं है। 'मन' और 'त्र'—अर्थात् वह जो मन की रक्षा करे, उसे स्थिर करे और उसकी दिशा बदल दे।"

रविशंकर गहराई से सुन रहा था।

उसने पूछा—

"गुरुदेव, क्या प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक ही मंत्र उचित होता है?"

गुरुदेव ने उत्तर दिया—

"नहीं। साधक की प्रकृति, उसकी तैयारी और उसके उद्देश्य के अनुसार साधना का मार्ग भिन्न हो सकता है। इसलिए गुरु का मार्गदर्शन महत्वपूर्ण माना गया है।"

इसके बाद सभी शिष्य मंडप में एकत्र हुए।

आज पहली बार रविशंकर ने अनुभव किया कि जब अनेक लोग एकाग्रता और श्रद्धा के साथ एक ही मंत्र का जप करते हैं, तो वातावरण में एक अद्भुत सामंजस्य उत्पन्न होता है।

जप समाप्त होने पर गुरु ने कहा—

"स्मरण रखो, मंत्र किसी चमत्कार का साधन नहीं है। यदि उसके साथ सत्य, संयम, करुणा और अनुशासन न हों, तो उसका उद्देश्य अधूरा रह जाता है।"

संध्या समय रविशंकर नदी के किनारे बैठा था।

बहते जल को देखते हुए उसने अनुभव किया कि जैसे नदी निरंतर बहती रहती है, वैसे ही मंत्र का अभ्यास भी निरंतर होना चाहिए। एक दिन का अभ्यास दिशा देता है, पर निरंतर अभ्यास रूपांतरण लाता है।

उसने अपनी डायरी में लिखा—

"आज मैंने जाना कि मंत्र केवल ध्वनि नहीं है। वह एक अनुशासित चेतना का माध्यम है। शब्द तभी जीवित होते हैं, जब उन्हें सत्य, श्रद्धा और सजगता का आधार मिलता है।"

रात्रि में आकाश तारों से भरा हुआ था।

रविशंकर ने आँखें बंद कीं। उसे लगा कि उसके भीतर अब केवल प्रश्न नहीं, बल्कि अभ्यास करने की इच्छा जाग चुकी है।

और उसी क्षण उसे आभास हुआ कि अगला पाठ सबसे कठिन होगा—

मौन की गहराई, जहाँ शब्द भी पीछे छूट जाते हैं और साधक का सामना स्वयं की अंतरात्मा से होता है।

अध्याय 15 : मौन की गहराई

आश्रम में उस दिन का सूर्योदय कुछ अलग था। वातावरण में एक विशेष गंभीरता थी। सभी शिष्य प्रातःकालीन प्रार्थना के बाद सभा-मंडप में एकत्र हुए। गुरुदेव ने शांत दृष्टि से सभी की ओर देखा और कहा—

"आज से अगले सात दिनों तक आश्रम में मौन साधना होगी। आवश्यक कार्य संकेतों से होंगे, पर अनावश्यक शब्द नहीं बोले जाएँगे। आज तुम जानोगे कि मौन केवल वाणी का नहीं, मन का भी होता है।"

रविशंकर के लिए यह नया अनुभव था। उसे लगा कि बोलना बंद करना तो सरल होगा, पर मन को शांत रखना शायद सबसे कठिन परीक्षा होगी।

पहला दिन – वाणी का मौन

पहले दिन उसने किसी से बात नहीं की। भोजन मौन में हुआ, सेवा मौन में हुई और अध्ययन भी मौन में। उसे अनुभव हुआ कि वह सामान्य जीवन में कितने अनावश्यक शब्द बोलता था।

रात को उसने डायरी में लिखा—

"शब्द कम हुए हैं, लेकिन मन अभी भी बहुत बोल रहा है।"

दूसरा दिन – विचारों का शोर

दूसरे दिन भीतर स्मृतियाँ, कल्पनाएँ और भविष्य की चिंताएँ उठने लगीं। कभी घर की याद आती, कभी पुरानी सफलताएँ, कभी असफलताएँ।

संध्या समय गुरुदेव ने केवल एक वाक्य ताड़पत्र पर लिखकर उसे दिया—

"विचारों को रोकना नहीं, उन्हें गुजरते हुए देखना।"

रविशंकर ने उसी का अभ्यास प्रारम्भ किया।

तीसरा दिन – स्वयं से भेंट

तीसरे दिन ध्यान के दौरान अचानक उसे अपने भीतर छिपा भय दिखाई दिया—असफल होने का भय, दूसरों की प्रशंसा पाने की इच्छा और स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध करने की लालसा।

उसकी आँखों से आँसू बह निकले।

उसने पहली बार स्वीकार किया कि साधना का सबसे बड़ा अवरोध बाहर नहीं, भीतर है।

चौथा दिन – प्रकृति का संवाद

उस दिन गुरुदेव ने सभी शिष्यों को वन में भेजा।

रविशंकर एक विशाल पीपल के वृक्ष के नीचे बैठ गया। उसने देखा—

हवा बिना शब्दों के संदेश देती है।

नदी बिना बोले गीत गाती है।

सूर्य बिना घोषणा के प्रकाश देता है।

पृथ्वी बिना शिकायत के सबका भार उठाती है।

उसे अनुभव हुआ कि प्रकृति का अधिकांश ज्ञान मौन में ही प्रकट होता है।

पाँचवाँ दिन – अंतरनाद

ध्यान करते-करते उसे फिर वही सूक्ष्म नाद सुनाई दिया, जिसे उसने पहले भी अनुभव किया था।

लेकिन इस बार वह अधिक स्पष्ट था।

न कोई बाहरी ध्वनि...

न कोई कल्पना...

केवल एक निरंतर, शांत और गहन स्पंदन।

उसका मन उस ध्वनि में धीरे-धीरे स्थिर होने लगा।

छठा दिन – गुरु का संदेश

संध्या को गुरुदेव उसके पास आए।

उन्होंने कुछ नहीं कहा।

केवल एक स्वच्छ दर्पण उसके सामने रख दिया।

रविशंकर ने अपना चेहरा देखा।

फिर गुरुदेव ने दर्पण को हटाकर उसकी ओर देखा।

उनकी आँखें मानो कह रही थीं—

"जैसे दर्पण केवल प्रतिबिंब दिखाता है, वैसे ही शुद्ध चेतना केवल सत्य दिखाती है।"

रविशंकर समझ गया कि मौन का उद्देश्य संसार से भागना नहीं, स्वयं को स्पष्ट देखना है।

सातवाँ दिन – मौन का अर्थ

सातवें दिन मौन-व्रत समाप्त होने से पहले सभी शिष्य सभा-मंडप में एकत्र हुए।

गुरुदेव ने पहली बार सात दिनों के बाद वाणी खोली।

उन्होंने कहा—

"मौन का अर्थ केवल बोलना बंद करना नहीं है। मौन वह अवस्था है, जहाँ मन प्रतिक्रिया देना छोड़ देता है और सत्य को स्वीकार करना सीखता है।"

उन्होंने आगे कहा—

"जो व्यक्ति मौन से डरता है, वह स्वयं से डरता है। और जो मौन को अपना मित्र बना लेता है, वह अपने भीतर के प्रकाश को पहचान लेता है।"

रविशंकर ने अनुभव किया कि इन सात दिनों में उसके भीतर कुछ बदल गया है।

वह पहले जैसा नहीं रहा।

अब वह बोलने से पहले सोचता था।

प्रतिक्रिया देने से पहले देखता था।

और निर्णय लेने से पहले स्वयं को परखता था।

रात्रि में उसने अपनी डायरी का नया पृष्ठ खोला और लिखा—

"आज मैंने जाना कि मौन खालीपन नहीं है। मौन वह स्थान है जहाँ सत्य जन्म लेता है। शब्द ज्ञान दे सकते हैं, पर मौन अनुभव देता है।"

उसने कलम बंद की और दीपक की लौ को देर तक देखता रहा।

अब उसे लगने लगा था कि ब्रह्म रसायन विद्या केवल ज्ञान का विषय नहीं, बल्कि जीवन जीने की एक विधि है।

लेकिन गुरुदेव जानते थे कि अभी सबसे महत्वपूर्ण शिक्षा शेष है।

अगली भोर वे रविशंकर को उस स्थान पर ले जाने वाले थे, जहाँ पहली बार वह **प्राण और चेतना** के गहरे संबंध का प्रत्यक्ष अनुभव करेगा।

यहीं से उसकी साधना एक नए चरण में प्रवेश करेगी।

अध्याय 16 : प्राण का विज्ञान

सात दिनों के मौन-व्रत के बाद आश्रम में पहली भोर का स्वागत शंखध्वनि से हुआ। आकाश हल्के नीले रंग में रंग चुका था और पूर्व दिशा से आती सूर्य की पहली किरणें पर्वतों की चोटियों को स्वर्णिम बना रही थीं।

गुरुदेव ने रविशंकर को आश्रम से कुछ दूर एक शांत पहाड़ी पर बुलाया। वहाँ से दूर-दूर तक फैले वन, नदी और उगता हुआ सूर्य स्पष्ट दिखाई दे रहे थे।

गुरुदेव ने कहा—

"आज तुम श्वास से आगे बढ़ोगे। आज का विषय है—प्राण।"

रविशंकर ने विनम्रता से पूछा—

"गुरुदेव, क्या प्राण वही है जिसके बारे में आपने पहले बताया था कि वह जीवन-शक्ति है?"

गुरुदेव ने मुस्कुराकर उत्तर दिया—

"हाँ, पर आज तुम उसे केवल सुनोगे नहीं, अनुभव करने का अभ्यास करोगे।"

उन्होंने रविशंकर से सीधी रीढ़ के साथ बैठने को कहा।

"आँखें बंद करो। श्वास को मत बदलो। केवल उसके साथ रहने का प्रयास करो।"

कुछ मिनटों तक केवल शांति रही।

फिर गुरु बोले—

"श्वास वायु का प्रवाह है, पर प्राण जीवन का प्रवाह है। श्वास दिखाई देती है, प्राण अनुभव किया जाता है।"

उन्होंने भूमि पर एक सरल चित्र बनाया।

मानव शरीर की आकृति।

उसमें सिर से लेकर पैरों तक एक मध्य रेखा।

फिर दोनों ओर दो और रेखाएँ।

गुरुदेव बोले—

"योग परंपरा में इन्हें ऊर्जा-प्रवाह के प्रमुख मार्गों के प्रतीक के रूप में समझाया गया है। जब जीवन संतुलित होता है, तो शरीर, मन और चेतना में भी संतुलन अनुभव होता है।"

रविशंकर ने पूछा—

"क्या यही कारण है कि कभी बिना किसी शारीरिक कारण के भी मन अशांत हो जाता है?"

गुरुदेव ने उत्तर दिया—

"हाँ। शरीर, मन और प्राण एक-दूसरे से जुड़े हैं। यदि एक असंतुलित हो जाए, तो उसका प्रभाव दूसरे पर भी दिखाई देता है।"

इसके बाद गुरु उसे नदी के किनारे ले गए।

उन्होंने कहा—

"इस बहते हुए जल को देखो।"

नदी शांत थी, पर उसका प्रवाह निरंतर था।

"यदि नदी का प्रवाह रुक जाए, तो जल सड़ने लगेगा। उसी प्रकार यदि जीवन में प्राण का संतुलित प्रवाह बाधित हो, तो मन में जड़ता, भय और असंतुलन बढ़ सकता है।"

रविशंकर ध्यानपूर्वक सुन रहा था।

गुरुदेव ने उसे एक सरल अभ्यास कराया।

धीरे-धीरे गहरी श्वास...

फिर सहज श्वास छोड़ना...

साथ ही पूरे शरीर का सजग अवलोकन।

कुछ समय बाद रविशंकर ने अनुभव किया कि उसके हाथों में हल्की गर्माहट है। चेहरे पर शांति थी और मन पहले से अधिक स्थिर।

उसने आँखें खोलीं।

"गुरुदेव, ऐसा लगा जैसे पूरे शरीर में एक सूक्ष्म ऊर्जा प्रवाहित हो रही हो।"

गुरुदेव ने कहा—

"अनुभव को पकड़ो मत। केवल उसका साक्षी बनो। साधना का उद्देश्य अनुभवों का संग्रह नहीं, चेतना की परिपक्वता है।"

फिर उन्होंने एक दीपक जलाया।

दीपक की लौ स्थिर थी।

उन्होंने पूछा—

"यह दीपक कब तक जलेगा?"

रविशंकर ने कहा—

"जब तक इसमें तेल है।"

गुरुदेव बोले—

"और यदि बाती हो, पर तेल न हो?"

"तो लौ बुझ जाएगी।"

गुरुदेव ने समझाया—

"शरीर दीपक है, श्वास बाती है और प्राण उस तेल की भाँति है जो जीवन की ज्योति को बनाए रखता है। इसलिए प्राण की रक्षा केवल अभ्यास से नहीं, बल्कि शुद्ध आहार, संतुलित विचार, उचित विश्राम, सेवा और सदाचार से भी होती है।"

रविशंकर को अब समझ आने लगा कि ब्रह्म रसायन विद्या केवल ध्यान या मंत्र तक सीमित नहीं है। यह जीवन के प्रत्येक कर्म से जुड़ी हुई है।

संध्या समय गुरु ने सभी शिष्यों से कहा—

"आज से प्रत्येक श्वास को उपहार समझो। जो सजग होकर श्वास लेता है, वही सजग होकर जीवन जीना सीखता है।"

रात्रि में रविशंकर ने अपनी डायरी में लिखा—

"आज मैंने जाना कि मैं केवल शरीर नहीं हूँ। मेरे भीतर एक ऐसा जीवन-प्रवाह है जो हर क्षण मुझे जीवित रखता है। यदि मैं उसके प्रति सजग हो जाऊँ, तो शायद मैं स्वयं को अधिक गहराई से समझ सकूँ।"

वह कुटिया के बाहर निकला।

आकाश में असंख्य तारे चमक रहे थे।

उसे लगा कि जैसे ब्रह्मांड में ग्रह और नक्षत्र एक अदृश्य व्यवस्था से संचालित होते हैं, वैसे ही मनुष्य के भीतर भी कोई सूक्ष्म व्यवस्था निरंतर कार्य कर रही है।

उसने मन ही मन प्रणाम किया।

अब उसकी साधना अगले चरण में प्रवेश करने वाली थी—**ऊर्जा केंद्रों की यात्रा**, जहाँ गुरुदेव उसे शरीर के प्रतीकात्मक ऊर्जा-केंद्रों, ध्यान और आत्मजागरण के गहन अभ्यास से परिचित कराएँगे।

अध्याय 17 : ऊर्जा केंद्रों का जागरण

प्रातःकाल का चौथा प्रहर था। आकाश अभी गहरे नीले रंग में डूबा हुआ था। आश्रम के सभी दीपक बुझ चुके थे, केवल ध्यान-मंडप में एक अखंड ज्योति जल रही थी।

गुरुदेव ने रविशंकर को बुलाया और कहा—

"आज की साधना भीतर की यात्रा है। इस यात्रा में आँखें बंद होंगी, पर दृष्टि पहली बार सचमुच खुलेगी।"

दोनों आश्रम से कुछ दूर स्थित एक प्राचीन पर्वत-गुफा की ओर चल पड़े। गुफा के भीतर शीतलता थी। छत से जल की बूँदें टपक रही थीं, और प्रत्येक बूँद की ध्वनि उस मौन को और गहरा बना रही थी।

गुरुदेव ने भूमि पर एक मानव आकृति बनाई।

उन्होंने सिर से लेकर मेरुदंड के आधार तक सात प्रकाश-बिंदु अंकित किए।

रविशंकर ने उत्सुक होकर पूछा—

"गुरुदेव, ये क्या हैं?"

गुरुदेव ने उत्तर दिया—

"योग परंपरा में इन्हें ऊर्जा-केंद्रों के प्रतीक के रूप में समझाया जाता है। इनका उद्देश्य शरीर की रचना बताना नहीं, बल्कि साधक को अपने भीतर जागरूकता के विभिन्न स्तरों का अभ्यास कराना है।"

उन्होंने आगे कहा—

"इन केंद्रों को केवल पढ़ने से नहीं, बल्कि अनुशासन, ध्यान और आत्मनिरीक्षण से समझा जा सकता है।"

गुरुदेव ने पहला ध्यान-अभ्यास आरम्भ कराया।

उन्होंने कहा—

"अपना ध्यान रीढ़ के आधार पर ले जाओ। वहाँ केवल सजग रहो। कोई कल्पना मत करो, कोई अनुभव बनाने का प्रयास मत करो।"

कुछ मिनट बीत गए।

फिर उन्होंने कहा—

"अब धीरे-धीरे ध्यान को ऊपर की ओर ले जाओ। प्रत्येक चरण पर केवल श्वास के साथ जागरूक बने रहो।"

रविशंकर ने अनुभव किया कि जैसे-जैसे उसका ध्यान ऊपर उठ रहा है, उसका मन अधिक शांत और केंद्रित होता जा रहा है।

उसे किसी चमत्कार का अनुभव नहीं हुआ, लेकिन भीतर एक नई स्थिरता अवश्य उत्पन्न हुई।

ध्यान समाप्त होने पर उसने पूछा—

"गुरुदेव, मुझे कोई प्रकाश या अद्भुत दृश्य नहीं दिखा।"

गुरुदेव मुस्कुराए।

"यही अच्छी बात है। साधना का लक्ष्य असाधारण अनुभवों का पीछा करना नहीं, बल्कि सजगता को गहरा करना है। यदि मन कल्पनाओं में उलझ जाए, तो वह सत्य से दूर हो सकता है।"

फिर उन्होंने एक बाँसुरी उठाई।

बाँसुरी में सात छिद्र थे।

उन्होंने मधुर स्वर में एक राग बजाया।

संगीत समाप्त होने पर उन्होंने पूछा—

"क्या केवल एक छिद्र से यह संगीत बन सकता था?"

रविशंकर ने कहा—

"नहीं गुरुदेव। सभी छिद्रों का संतुलित उपयोग आवश्यक था।"

गुरुदेव बोले—

"मनुष्य का जीवन भी ऐसा ही है। यदि जीवन का कोई एक पक्ष असंतुलित हो जाए—शरीर, मन, भावना, बुद्धि या आचरण—तो भीतर का संगीत भी असंतुलित हो जाता है। साधना इन सबमें सामंजस्य लाने की कला है।"

दिन के दूसरे पहर में गुरुदेव ने सभी शिष्यों को सेवा के लिए भेजा।

किसी ने वृक्ष लगाए।

किसी ने गौशाला की सफाई की।

रविशंकर को आश्रम के पुस्तकालय की व्यवस्था का कार्य मिला।

पुस्तकों को क्रम से सजाते हुए उसने अनुभव किया कि बाहरी व्यवस्था और भीतर की व्यवस्था एक-दूसरे को प्रभावित करती हैं।

संध्या समय गुरुदेव ने कहा—

"ऊर्जा का जागरण केवल ध्यान में नहीं होता। जब तुम्हारे विचार शुद्ध हों, वाणी मधुर हो, कर्म निष्काम हों और मन करुणा से भरा हो—तभी वास्तविक जागरण आरम्भ होता है।"

रात्रि में रविशंकर ने अपनी डायरी में लिखा—

"आज मैंने समझा कि ऊर्जा-केंद्र कोई रहस्यमय उपलब्धि नहीं, बल्कि आत्म-विकास के चरण हैं। जब मैं भय से साहस की ओर, स्वार्थ से सेवा की ओर, और अशांति से संतुलन की ओर बढ़ता हूँ, तभी मेरे भीतर वास्तविक परिवर्तन होता है।"

उसने कलम बंद की और आकाश की ओर देखा।

पूर्ण निस्तब्धता में उसे फिर वही सूक्ष्म नाद सुनाई दिया।

लेकिन इस बार उस नाद के साथ उसके भीतर एक नई अनुभूति भी थी—

स्थिरता।

उसे लगा कि अब उसकी साधना केवल ज्ञान प्राप्त करने के लिए नहीं रही, बल्कि स्वयं को बदलने की प्रक्रिया बन चुकी है।

उसे यह ज्ञात नहीं था कि अगली सुबह गुरुदेव उसे **समय और चेतना** के ऐसे रहस्य से परिचित कराएँगे, जहाँ वर्तमान क्षण की शक्ति उसके जीवन का सबसे बड़ा शिक्षक बनने वाली थी।

अध्याय 18 : वर्तमान का विज्ञान

रात्रि की अंतिम बेला समाप्त हो रही थी। पूर्व दिशा में हल्की अरुणिमा दिखाई देने लगी थी। आश्रम की घंटी धीरे-धीरे बजी और सभी शिष्य प्रातःकालीन साधना के लिए एकत्र होने लगे।

आज गुरुदेव रविशंकर को आश्रम से दूर एक ऊँची पहाड़ी पर ले गए। वहाँ से दूर तक फैली पर्वत-श्रृंखलाएँ, बहती नदी और उगते सूर्य का अद्भुत दृश्य दिखाई दे रहा था।

कुछ समय तक दोनों मौन रहे।

फिर गुरुदेव ने पूछा—

"रविशंकर, अभी तुम्हारा मन कहाँ है?"

रविशंकर ने उत्तर दिया—

"गुरुदेव, कभी मुझे अपना अतीत याद आता है, कभी भविष्य की चिंता होती है।"

गुरुदेव मुस्कुराए।

उन्होंने अपनी मुट्ठी में रेत भर ली।

धीरे-धीरे उसे खोलते गए।

रेत के कण नीचे गिरते गए।

उन्होंने कहा—

"यह अतीत है। इसे पकड़कर नहीं रखा जा सकता।"

फिर उन्होंने सामने उगते सूर्य की ओर संकेत किया।

"और भविष्य उस उगते सूर्य की तरह है। वह आएगा, पर अभी नहीं।"

इसके बाद उन्होंने अपनी हथेली पर एक जल की बूँद रखी।

"यह वर्तमान है। यदि अभी इसका ध्यान न रखा जाए, तो यह भी फिसल जाएगी।"

रविशंकर गहराई से सुन रहा था।

गुरुदेव बोले—

"मनुष्य का अधिकांश जीवन या तो बीते हुए समय के पश्चाताप में बीतता है या आने वाले समय की चिंता में। वर्तमान ही एकमात्र क्षण है, जहाँ परिवर्तन संभव है।"

रविशंकर ने पूछा—

"क्या वर्तमान में जीना ही साधना है?"

गुरुदेव ने उत्तर दिया—

"साधना का द्वार वर्तमान से ही खुलता है। क्योंकि श्वास अभी चल रही है, जीवन अभी है, चेतना अभी जाग सकती है।"

फिर उन्होंने रविशंकर से कहा—

"चलो, एक प्रयोग करते हैं।"

दोनों धीरे-धीरे वन-पथ पर चलने लगे।

गुरुदेव बोले—

"चलते समय केवल अपने कदमों को महसूस करो।"

कुछ देर बाद—

"अब केवल श्वास को महसूस करो।"

फिर—

"अब केवल पक्षियों की ध्वनि सुनो।"

फिर—

"अब केवल सूर्य की ऊष्मा का अनुभव करो।"

रविशंकर ने देखा कि जैसे-जैसे उसका ध्यान वर्तमान क्षण पर टिकता गया, मन की अनावश्यक बातें कम होती गईं।

कुछ समय बाद उसने कहा—

"गुरुदेव, ऐसा लग रहा है कि समय धीमा हो गया है।"

गुरुदेव मुस्कुराए।

"समय नहीं बदला, तुम्हारी चेतना बदल गई है। जब मन वर्तमान में होता है, तब प्रत्येक क्षण पूर्ण अनुभव बन जाता है।"

वे आगे बढ़े।

रास्ते में एक छोटा बालक नदी किनारे पत्थरों से खेल रहा था।

वह पूरी तल्लीनता से अपना खेल खेल रहा था।

गुरुदेव ने उसकी ओर संकेत करते हुए कहा—

"देखो, यही सहज ध्यान है। जब मन पूरी तरह वर्तमान में होता है, तब वह बिखरता नहीं।"

रविशंकर ने पहली बार समझा कि ध्यान केवल आँखें बंद करके बैठना नहीं है।

ध्यान तो जीवन के प्रत्येक कार्य में उपस्थित रहने की कला है।

संध्या समय गुरुदेव ने सभी शिष्यों से कहा—

"भोजन करते समय केवल भोजन करो। चलते समय केवल चलो। सुनते समय केवल सुनो। जो व्यक्ति एक समय में एक कार्य पूरी सजगता से करता है, वही धीरे-धीरे अपने मन का स्वामी बनता है।"

रात्रि में रविशंकर ने अपनी डायरी खोली।

उसने लिखा—

"आज मैंने जाना कि जीवन भविष्य में नहीं, वर्तमान में घटित होता है। अतीत मुझे अनुभव देता है, भविष्य मुझे दिशा देता है, पर परिवर्तन केवल वर्तमान क्षण में ही संभव है।"

उसने कलम रख दी।

कुटिया के बाहर चंद्रमा शांत प्रकाश बिखेर रहा था।

रविशंकर ने गहरी श्वास ली।

इस बार उसने भविष्य के बारे में नहीं सोचा।

न ही अतीत को याद किया।

वह केवल उस क्षण को जी रहा था।

और उसी क्षण उसे अनुभव हुआ कि **ब्रह्म रसायन विद्या** का वास्तविक प्रयोग किसी प्रयोगशाला में नहीं, बल्कि प्रत्येक सजग श्वास, प्रत्येक जागरूक विचार और प्रत्येक वर्तमान क्षण में होता है।

उसे ज्ञात नहीं था कि अगली सुबह गुरुदेव उसे **सेवा और त्याग** के उस रहस्य से परिचित कराएँगे, जहाँ साधना केवल स्वयं तक सीमित नहीं रहेगी, बल्कि समस्त मानवता के कल्याण का माध्यम बन जाएगी।

अध्याय 19 : सेवा का रसायन

प्रभात की पहली किरणों के साथ आश्रम में एक नई हलचल थी। आज ध्यान-मंडप में साधना नहीं, बल्कि सेवा का दिन था। सभी शिष्य अपने-अपने कार्यों के लिए तैयार खड़े थे।

रविशंकर ने सोचा कि आज कोई विशेष ध्यान-अभ्यास होगा, पर गुरुदेव ने मुस्कुराते हुए कहा—

"आज की साधना ध्यान में नहीं, जीवन में होगी।"

उसी समय पास के गाँव से कुछ लोग आश्रम पहुँचे। एक वृद्ध किसान अपने बीमार पुत्र को लेकर आया था। कुछ महिलाएँ औषधि लेने आई थीं। कुछ बच्चे शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा से आए थे।

गुरुदेव ने सभी शिष्यों की ओर देखा और कहा—

"आज तुम्हारा गुरु यह समाज है। जो इनकी सेवा करेगा, वही आज की साधना पूरी करेगा।"

रविशंकर को औषधीय उद्यान और चिकित्साशाला में सेवा का कार्य मिला।

वह वैद्य के साथ मिलकर जड़ी-बूटियाँ छाँटने लगा, औषधियाँ तैयार करने लगा और आने वाले लोगों को पानी तथा बैठने का स्थान देने लगा।

एक वृद्ध व्यक्ति ने उसके हाथ पकड़कर कहा—

"बेटा, तुम्हारी मुस्कान ने ही आधी पीड़ा कम कर दी।"

यह सुनकर रविशंकर के मन में गहरा स्पर्श हुआ।

उसे अनुभव हुआ कि कभी-कभी उपचार केवल औषधि से नहीं, व्यवहार से भी होता है।

दोपहर के समय गुरुदेव उसे गाँव ले गए।

रास्ते में एक टूटा हुआ पुल था।

गाँव के बच्चे उसे पार करने में कठिनाई अनुभव कर रहे थे।

गुरुदेव ने कहा—

"यदि तुम केवल ध्यान में बैठकर आत्मज्ञान खोजोगे और समाज की पीड़ा को अनदेखा कर दोगे, तो तुम्हारी साधना अधूरी रहेगी।"

सभी शिष्यों ने मिलकर लकड़ी और पत्थरों से अस्थायी मार्ग बनाया।

बच्चे मुस्कुराते हुए सुरक्षित पार होने लगे।

रविशंकर ने पहली बार अनुभव किया कि किसी के जीवन को थोड़ा आसान बना देना भी साधना का एक रूप है।

संध्या समय आश्रम लौटते हुए उसने पूछा—

"गुरुदेव, क्या सेवा ध्यान से भी बड़ी साधना है?"

गुरुदेव ने उत्तर दिया—

"ध्यान तुम्हें अपने भीतर ले जाता है, सेवा तुम्हें अपने से बाहर निकालती है। जब दोनों एक हो जाते हैं, तभी साधना पूर्ण होती है।"

फिर उन्होंने एक दीपक जलाया।

उससे दूसरा दीपक जलाया।

फिर तीसरा।

कुछ ही क्षणों में पूरा कक्ष प्रकाश से भर गया।

गुरुदेव बोले—

"पहले दीपक का प्रकाश कम नहीं हुआ। यही सेवा का नियम है। जो ज्ञान, प्रेम और करुणा बाँटता है, उसका खज़ाना घटता नहीं, बढ़ता है।"

रविशंकर ने पूछा—

"गुरुदेव, सेवा करते समय सबसे बड़ा अवरोध क्या होता है?"

गुरुदेव ने शांत स्वर में कहा—

"अहंकार। जब मन में यह भावना आती है कि 'मैं सेवा कर रहा हूँ', तभी सेवा का सौंदर्य कम होने लगता है। सच्ची सेवा में कर्तापन धीरे-धीरे विलीन हो जाता है।"

रात्रि भोजन के बाद सभी शिष्य अग्निकुंड के पास बैठे।

आज कोई प्रवचन नहीं हुआ।

केवल दिनभर के अनुभव साझा किए गए।

एक शिष्य ने कहा—

"आज मैंने धैर्य सीखा।"

दूसरे ने कहा—

"मैंने करुणा सीखी।"

जब रविशंकर की बारी आई, उसने कहा—

"आज मैंने जाना कि सेवा दूसरों के लिए कम, स्वयं को बदलने के लिए अधिक होती है। जिस क्षण मैं किसी की सहायता करता हूँ, उसी क्षण मेरे भीतर का स्वार्थ थोड़ा और कम हो जाता है।"

गुरुदेव ने प्रसन्न होकर कहा—

"यही ब्रह्म रसायन विद्या का सामाजिक आयाम है। जब भीतर का परिवर्तन बाहर के जीवन में दिखाई देने लगे, तभी ज्ञान सार्थक होता है।"

रात्रि गहराने लगी।

रविशंकर अपनी कुटिया में पहुँचा।

उसने अपनी डायरी खोली और लिखा—

"आज मैंने समझा कि मनुष्य का वास्तविक मूल्य उसके ज्ञान से नहीं, उसके व्यवहार से पहचाना जाता है। यदि मेरी साधना किसी दुखी व्यक्ति के चेहरे पर मुस्कान नहीं ला सकती, तो मुझे अभी बहुत कुछ सीखना बाकी है।"

उसने दीपक बुझा दिया।

लेकिन उसके भीतर करुणा का एक नया दीप जल चुका था।

उसे अब यह आभास होने लगा था कि ब्रह्म रसायन विद्या का अंतिम उद्देश्य केवल आत्मज्ञान नहीं, बल्कि **आत्मज्ञान से लोककल्याण** की ओर बढ़ना है।

और अगले दिन गुरुदेव उसकी साधना की अब तक की सबसे कठिन परीक्षा लेने वाले थे—**अहंकार की परीक्षा**, जहाँ उसे अपने भीतर छिपे अंतिम बंधनों का सामना करना होगा।

अध्याय 20 : अहंकार का विसर्जन

प्रातःकाल का समय था। आश्रम पर हल्का कोहरा छाया हुआ था। वृक्षों की शाखाओं पर ओस की बूँदें मोतियों की भाँति चमक रही थीं। वातावरण में गहरी शांति थी, पर रविशंकर के भीतर एक अनजानी हलचल उठ रही थी।

आज गुरुदेव ने उसे अकेले बुलाया।

वे आश्रम से दूर एक ऊँचे पर्वत की चोटी पर पहुँचे। वहाँ से पूरा वन, नदी और दूर-दूर तक फैले गाँव दिखाई दे रहे थे।

गुरुदेव ने पूछा—

"रविशंकर, तुम्हें अपनी सबसे बड़ी उपलब्धि क्या लगती है?"

रविशंकर कुछ क्षण मौन रहा।

फिर बोला—

"गुरुदेव, मैंने मौन सीखा, ध्यान सीखा, सेवा सीखी और अपने मन को समझना प्रारम्भ किया है।"

गुरुदेव ने उसकी आँखों में देखते हुए कहा—

"और क्या तुम्हें इस पर गर्व है?"

यह प्रश्न बिजली की तरह उसके भीतर उतरा।

वह उत्तर नहीं दे सका।

गुरुदेव ने एक मिट्टी का पात्र उठाया।

उसमें स्वच्छ जल भरा।

फिर उसमें धीरे-धीरे नमक डाल दिया।

उन्होंने पूछा—

"क्या अब तुम नमक को अलग कर सकते हो?"

"नहीं गुरुदेव।"

गुरुदेव बोले—

"अहंकार भी ऐसा ही है। वह बहुत सूक्ष्म रूप में मन में घुल जाता है। कभी ज्ञान का अहंकार, कभी त्याग का, कभी सेवा का, कभी साधना का। यदि साधक सजग न रहे, तो आध्यात्मिक अहंकार सबसे कठिन बंधन बन जाता है।"

रविशंकर का सिर झुक गया।

उसे याद आने लगा—

जब उसने पहली बार स्वयं को अन्य लोगों से अधिक समझदार माना था।

जब सेवा करते हुए मन में प्रशंसा की इच्छा उठी थी।

जब ध्यान के छोटे-से अनुभव पर उसे लगा था कि वह आगे बढ़ गया है।

आज उसे अपने भीतर का छिपा हुआ अहंकार स्पष्ट दिखाई देने लगा।

गुरुदेव ने कहा—

"जिस दिन साधक यह मान ले कि वह पहुँच गया है, उसी दिन उसकी यात्रा रुक जाती है।"

इसके बाद वे दोनों पर्वत से उतरकर एक कुम्हार की झोपड़ी पहुँचे।

कुम्हार मिट्टी को चाक पर घुमा रहा था।

एक पात्र बिगड़ गया।

उसने बिना क्रोध किए मिट्टी को फिर से गूँथा और नया पात्र बनाने लगा।

गुरुदेव ने पूछा—

"क्या देखा?"

रविशंकर ने कहा—

"उसने असफलता को अंत नहीं माना।"

गुरुदेव बोले—

"प्रकृति हर क्षण विनम्रता सिखाती है। मिट्टी यदि कठोर हो जाए, तो नया आकार नहीं ले सकती। मन भी ऐसा ही है। विनम्रता ही उसे विकसित होने योग्य बनाए रखती है।"

संध्या समय आश्रम में एक विशेष सभा हुई।

सभी शिष्यों को एक-एक दीपक दिया गया।

गुरुदेव ने कहा—

"इस दीपक को अपने सामने रखो और मन ही मन अपने उस अहंकार को पहचानो, जो तुम्हें सत्य से दूर ले जाता है।"

लंबे मौन के बाद उन्होंने सभी दीपकों की लौ एक बड़े दीप से मिला दी।

अब यह बताना कठिन था कि किस दीपक की लौ पहले जली थी।

गुरुदेव बोले—

"यही आत्मा का स्वरूप है। अलग-अलग दीपक दिखाई देते हैं, पर प्रकाश एक है। जब 'मैं' का भाव कम होता है, तब 'हम' का अनुभव जन्म लेता है।"

रविशंकर की आँखों से आँसू बह निकले।

उसने अनुभव किया कि वह जितना स्वयं को जानता था, उससे कहीं अधिक अभी जानना शेष है।

उसने गुरु के चरणों में प्रणाम किया और कहा—

"गुरुदेव, आज मैं पहली बार स्वयं को विद्यार्थी मान पा रहा हूँ।"

गुरुदेव ने उसके सिर पर हाथ रखा।

"यही तुम्हारी सबसे बड़ी उपलब्धि है। जिस दिन साधक सीखना बंद कर देता है, उसी दिन उसका विकास रुक जाता है।"

रात्रि के अंतिम प्रहर में रविशंकर अपनी कुटिया में लौटा।

उसने अपनी डायरी का नया पृष्ठ खोला।

बहुत देर तक कुछ नहीं लिखा।

फिर केवल एक वाक्य लिखा—

"ज्ञान ने मुझे प्रश्न दिए, साधना ने मुझे अनुभव दिए, पर विनम्रता ने मुझे स्वयं से मिलाया।"

उसने डायरी बंद कर दी।

बाहर आकाश में अनगिनत तारे चमक रहे थे।

उसे लगा कि ब्रह्मांड की विशालता के सामने उसका अहंकार कितना छोटा है।

उसी क्षण आश्रम की घंटी बजी।

गुरुदेव की आवाज़ दूर से सुनाई दी—

"साधना पूर्ण हुई। अब अनुभव की यात्रा आरम्भ होती है। वहाँ पुस्तकों से अधिक तुम्हारा अंतर्मन तुम्हारा मार्गदर्शक होगा।"

रविशंकर ने पूर्व दिशा की ओर देखा।

सूर्य की पहली किरण क्षितिज पर उभर रही थी।

यह केवल एक नए दिन का उदय नहीं था।

यह उसकी चेतना के एक नए अध्याय का आरम्भ था।

भाग 2 – साधना का समापन

अब वह केवल ज्ञान का खोजी नहीं रहा।

वह एक साधक बन चुका था।

भाग 3 – अनुभव

अध्याय 21 : अंतर्यात्रा का प्रारंभ

सूर्योदय की पहली किरण जब आश्रम की पहाड़ियों पर पड़ी, तब रविशंकर के जीवन का एक नया चरण आरम्भ हो चुका था।

अब वह वही व्यक्ति नहीं था जो कुछ महीने पहले केवल प्रश्नों के उत्तर खोजने आया था। उसकी आँखों में अब जिज्ञासा के साथ स्थिरता थी, और मन में बेचैनी के स्थान पर एक शांत संकल्प।

गुरुदेव ने उसे अपने पास बुलाया।

उन्होंने कहा—

"रविशंकर, अब तक तुमने साधना के साधन सीखे हैं। अब तुम्हें अनुभव के मार्ग पर चलना है। इस मार्ग में सबसे बड़ी प्रयोगशाला तुम्हारा अपना अस्तित्व होगा।"

रविशंकर ने पूछा—

"गुरुदेव, क्या अनुभव ज्ञान से अलग होता है?"

गुरुदेव मुस्कुराए।

"ज्ञान बताता है कि अग्नि गर्म होती है। अनुभव वह है जब तुम स्वयं उसकी ऊष्मा महसूस करते हो।"

उन्होंने आगे कहा—

"तुमने श्वास को जाना, नाद को सुना, मन को देखा और सेवा का महत्व समझा। अब तुम्हें अपने भीतर उतरना होगा।"

उस दिन गुरुदेव उसे आश्रम के एक शांत कक्ष में ले गए। वहाँ कोई मूर्ति नहीं थी, कोई पुस्तक नहीं थी—केवल एक आसन और एक दीपक।

गुरुदेव बोले—

"आज से तुम्हारी अंतर्यात्रा प्रारंभ होगी।"

उन्होंने रविशंकर को निर्देश दिया—

"आँखें बंद करो और अपने शरीर का अनुभव करो।"

रविशंकर ने ऐसा ही किया।

पहले उसे शरीर का भार महसूस हुआ।

फिर श्वास का प्रवाह।

फिर हृदय की धड़कन।

धीरे-धीरे उसका ध्यान भीतर की ओर जाने लगा।

गुरुदेव की आवाज़ सुनाई दी—

"शरीर को देखो, पर स्वयं को केवल शरीर मत मानो। विचारों को देखो, पर स्वयं को केवल विचार मत मानो। भावनाओं को देखो, पर स्वयं को केवल भावना मत मानो।"

रविशंकर गहरे ध्यान में चला गया।

कुछ समय बाद उसे ऐसा अनुभव हुआ जैसे वह अपने विचारों को दूर से देख रहा हो। विचार आते थे, जाते थे, पर वह उनसे अलग एक शांत उपस्थिति के रूप में बना हुआ था।

ध्यान समाप्त होने के बाद गुरुदेव ने पूछा—

"क्या अनुभव हुआ?"

रविशंकर ने धीरे से कहा—

"ऐसा लगा जैसे मेरे भीतर एक ऐसा स्थान है जहाँ कोई हलचल नहीं है।"

गुरुदेव बोले—

"वही तुम्हारी अंतर्यात्रा का प्रथम द्वार है।"

फिर उन्होंने उसे एक छोटी-सी नदी के पास ले जाकर कहा—

"इस जल को देखो।"

नदी बह रही थी।

"ऊपर से जल में लहरें दिखाई देती हैं, पर गहराई में शांति होती है। मन भी ऐसा ही है। विचार ऊपर की लहरें हैं, चेतना उसकी गहराई।"

रविशंकर देर तक नदी को देखता रहा।

उसे लगा कि अब तक वह जीवन की सतह पर ही तैर रहा था। आज पहली बार वह गहराई की ओर बढ़ रहा है।

संध्या समय आश्रम में अग्नि के सामने बैठकर गुरुदेव ने कहा—

**"अनुभव के मार्ग पर तीन बातें याद रखना—

पहला, किसी अनुभव से आसक्त मत होना।

दूसरा, किसी अनुभव को छोटा मत समझना।

तीसरा, हर अनुभव को आत्मज्ञान की दिशा में उपयोग करना।"**

रविशंकर ने पूछा—

"गुरुदेव, क्या इस यात्रा में मुझे दिव्य अनुभव होंगे?"

गुरुदेव ने उत्तर दिया—

"जो अनुभव की खोज करता है, वह अनुभवों में उलझ सकता है। जो सत्य की खोज करता है, उसके लिए अनुभव मार्ग बन जाते हैं।"

यह वाक्य रविशंकर के मन में गहराई से उतर गया।

रात्रि में उसने अपनी डायरी खोली।

उसने लिखा—

"आज मेरी यात्रा बाहर से भीतर की ओर मुड़ गई है। पहले मैं ब्रह्मांड को समझना चाहता था, अब मैं उस चेतना को समझना चाहता हूँ जिसके माध्यम से ब्रह्मांड को अनुभव किया जाता है।"

उसने दीपक की लौ को देखा।

लौ छोटी थी, पर अंधकार को दूर कर रही थी।

उसे लगा—

मनुष्य के भीतर भी एक ऐसी ही ज्योति है।

बस आवश्यकता है उसे पहचानने की।

और इसी पहचान की यात्रा में अगला चरण आने वाला था—

"अंतर नाद का अनुभव", जहाँ रविशंकर अपने भीतर उठने वाली सूक्ष्म ध्वनि और चेतना के गहरे संबंध को समझेगा।

अध्याय 22 : अंतर नाद का अनुभव

रात्रि का समय था। पूरा आश्रम गहरी शांति में डूबा हुआ था। आकाश में पूर्ण चंद्रमा अपनी शीतल रोशनी बिखेर रहा था। पेड़ों की पत्तियाँ मंद हवा के साथ धीरे-धीरे हिल रही थीं।

रविशंकर अपने ध्यान-कक्ष में बैठा था।

आज गुरुदेव ने उसे एक नया अभ्यास दिया था—

"बाहर की ध्वनियों से आगे बढ़कर भीतर के नाद को सुनने का प्रयास करो।"

रविशंकर ने आँखें बंद कीं।

पहले उसे दूर बहती नदी की आवाज़ सुनाई दी।

फिर हवा की सरसराहट।

फिर धीरे-धीरे बाहरी ध्वनियाँ शांत होने लगीं।

कुछ समय बाद उसे अपने हृदय की धड़कन सुनाई दी।

धक...

धक...

धक...

फिर श्वास की लय।

धीरे-धीरे उसका ध्यान और गहरा होता गया।

अचानक उसे एक सूक्ष्म कंपन का अनुभव हुआ।

यह कोई बाहरी ध्वनि नहीं थी।

न कोई वाद्य था।

न कोई शब्द।

फिर भी उसमें एक स्पष्ट लय थी।

मानो अनंत आकाश में कोई अदृश्य संगीत प्रवाहित हो रहा हो।

रविशंकर उस अनुभव में स्थिर हो गया।

कुछ देर बाद उसे लगा जैसे वह स्वयं उस ध्वनि को सुन नहीं रहा, बल्कि उसी ध्वनि का एक भाग बन गया है।

ध्यान समाप्त होने पर उसने आँखें खोलीं।

उसी समय गुरुदेव कक्ष में आए।

उन्होंने पूछा—

"क्या अनुभव हुआ?"

रविशंकर ने उत्तर दिया—

"गुरुदेव, मैंने एक ऐसी ध्वनि सुनी जिसे शब्दों में समझाना कठिन है। वह बाहर नहीं थी, भीतर थी।"

गुरुदेव ने कहा—

"नाद का अनुभव सुनने से अधिक होने का अनुभव है। जब साधक का मन स्थिर होता है, तब वह अपने भीतर की सूक्ष्म लय को पहचानना प्रारम्भ करता है।"

रविशंकर ने पूछा—

"क्या यही वह अनाहत नाद है जिसके बारे में आपने पहले बताया था?"

गुरुदेव बोले—

"यह उसकी एक झलक हो सकती है। लेकिन याद रखो—किसी भी अनुभव को अंतिम सत्य मत मानना। अनुभव मार्ग का संकेत है, मंज़िल नहीं।"

फिर उन्होंने उसे एक उदाहरण दिया।

उन्होंने एक वीणा उठाई और एक तार को छेड़ा।

ध्वनि कुछ क्षण तक गूँजी और फिर शांत हो गई।

उन्होंने कहा—

"जब तार कंपन करता है, तो ध्वनि उत्पन्न होती है। इसी प्रकार जब चेतना में सूक्ष्म जागरूकता उत्पन्न होती है, तो साधक अपने भीतर के स्पंदनों को अनुभव कर सकता है।"

रविशंकर ध्यान से सुनता रहा।

गुरुदेव ने आगे कहा—

"ब्रह्म रसायन विद्या में नाद केवल संगीत नहीं है। यह उस सिद्धांत का प्रतीक है कि सम्पूर्ण अस्तित्व में गति और कंपन विद्यमान है।"

अगले कुछ दिनों तक रविशंकर ने नियमित अभ्यास किया।

कभी नाद स्पष्ट अनुभव होता।

कभी नहीं।

कभी मन शांत रहता।

कभी विचारों से भर जाता।

एक दिन उसने गुरुदेव से कहा—

"गुरुदेव, कभी अनुभव होता है और कभी नहीं। ऐसा क्यों?"

गुरुदेव मुस्कुराए।

"क्योंकि अनुभव तुम्हारे नियंत्रण की वस्तु नहीं है। तुम्हारा कार्य केवल तैयारी करना है—मन को शांत करना, जीवन को संतुलित करना और सजग रहना।"

उन्होंने एक बीज हाथ में लिया।

"क्या बीज को खींचकर वृक्ष बनाया जा सकता है?"

"नहीं गुरुदेव।"

"केवल उचित वातावरण दिया जाता है, फिर प्रकृति अपना कार्य करती है। साधना भी ऐसी ही है।"

यह बात रविशंकर के हृदय में उतर गई।

उस रात उसने अपनी डायरी में लिखा—

"आज मैंने जाना कि भीतर का नाद किसी उपलब्धि का विषय नहीं, बल्कि सजगता का अनुभव है। जब मन शांत होता है, तब जीवन की सूक्ष्म लय सुनाई देने लगती है।"

वह बाहर आया।

रात शांत थी।

पर अब उस शांति में भी उसे एक संगीत अनुभव हो रहा था।

नदी बह रही थी।

हवा चल रही थी।

तारे चमक रहे थे।

और उसके भीतर एक नया बोध जन्म ले रहा था—

सारा अस्तित्व एक महान लय में जुड़ा हुआ है।

अध्याय 23 : विचारों का रसायन

सुबह की पहली किरणों के साथ आश्रम में एक नई ऊर्जा फैल गई थी। रविशंकर अब नियमित साधना में स्थिर होने लगा था। उसके भीतर शांति बढ़ रही थी, पर गुरुदेव जानते थे कि अभी एक और गहरा रहस्य समझना बाकी है।

आज गुरुदेव उसे आश्रम की प्राचीन पुस्तकालय में ले गए।

चारों ओर पुराने ग्रंथ, ताड़पत्र और ज्ञान के अनेक स्रोत रखे हुए थे।

गुरुदेव ने एक खाली पृष्ठ रविशंकर के सामने रखा और पूछा—

"इस पर क्या लिखा है?"

रविशंकर ने उत्तर दिया—

"कुछ भी नहीं, गुरुदेव।"

गुरुदेव मुस्कुराए।

"फिर भी इसी खाली पृष्ठ पर संसार के महान विचार लिखे जा सकते हैं। इसी प्रकार मन भी एक खाली आकाश की तरह है। उसमें जो विचार बोए जाते हैं, वही जीवन की दिशा बनाते हैं।"

रविशंकर ध्यान से सुन रहा था।

गुरुदेव ने कहा—

"विचार केवल मन की छोटी-सी गतिविधि नहीं हैं। वे हमारे भाव, निर्णय और कर्मों को दिशा देने वाली शक्ति हैं।"

उन्होंने उसे एक बगीचे में ले जाकर दो स्थान दिखाए।

एक स्थान पर सुंदर फूल खिले थे।

दूसरे स्थान पर खरपतवार उग आए थे।

गुरुदेव बोले—

"दोनों जगहों पर मिट्टी एक ही थी, जल भी एक ही था। अंतर केवल बीजों का था।"

रविशंकर समझ गया।

"अर्थात् मन में कौन से विचार बोए जाते हैं, यह महत्वपूर्ण है।"

गुरुदेव ने कहा—

"हाँ। सकारात्मक विचार केवल कल्पना नहीं हैं, वे जीवन में अनुशासन, प्रयास और व्यवहार के माध्यम से वास्तविक परिवर्तन ला सकते हैं।"

फिर उन्होंने एक दीपक जलाया।

उसकी लौ स्थिर थी।

उन्होंने पूछा—

"यदि इस दीपक के पास लगातार हवा चलती रहे तो क्या होगा?"

"लौ डगमगाने लगेगी।"

"और यदि उसे सुरक्षित स्थान मिले?"

"तो वह स्थिर जलेगी।"

गुरुदेव बोले—

"मन भी ऐसा ही है। अनावश्यक भय, क्रोध, ईर्ष्या और चिंता मन की लौ को अस्थिर कर देते हैं। सजगता, ज्ञान और संतुलन उसे स्थिर बनाते हैं।"

इसके बाद उन्होंने रविशंकर को एक अभ्यास दिया।

"आज पूरे दिन अपने विचारों को देखना। उन्हें बदलने की जल्दी मत करना। पहले उन्हें पहचानो।"

रविशंकर ने अभ्यास आरम्भ किया।

सुबह उसने देखा—

एक विचार आया—"मुझे सफल होना है।"

फिर दूसरा—"लोग मुझे पहचानें।"

फिर तीसरा—"क्या मैं वास्तव में योग्य हूँ?"

वह चौंक गया।

उसे समझ आया कि मन में कितने विचार बिना उसकी अनुमति के आते-जाते रहते हैं।

शाम को वह गुरुदेव के पास पहुँचा।

उसने कहा—

"गुरुदेव, मैंने पाया कि मेरे मन में अनेक इच्छाएँ और भय छिपे हुए हैं।"

गुरुदेव ने उत्तर दिया—

"यही आत्मनिरीक्षण है। जिस विचार को तुम देख लेते हो, उसके गुलाम नहीं रहते।"

उन्होंने आगे कहा—

"विचारों को दबाना नहीं है, उन्हें शुद्ध करना है। जैसे रसायनज्ञ अशुद्ध पदार्थ को शुद्ध करता है, वैसे ही साधक अपने विचारों को विवेक और साधना से शुद्ध करता है।"

रविशंकर ने पूछा—

"क्या विचार वास्तव में शरीर को भी प्रभावित करते हैं?"

गुरुदेव बोले—

"मन और शरीर एक-दूसरे से जुड़े हैं। तनाव, शांति, उत्साह और भय जैसी अवस्थाएँ शरीर में भी परिवर्तन ला सकती हैं। इसलिए विचारों की गुणवत्ता जीवन की गुणवत्ता को प्रभावित करती है।"

रात्रि में रविशंकर ने अपनी डायरी खोली।

उसने लिखा—

"आज मैंने जाना कि मेरा मन एक प्रयोगशाला है और मेरे विचार उसके रसायन हैं। यदि मैं सावधान रहूँ, तो मैं अपने जीवन की दिशा को बेहतर बना सकता हूँ।"

उसने आकाश की ओर देखा।

अनगिनत तारे चमक रहे थे।

उसे लगा कि जैसे ब्रह्मांड में व्यवस्था है, वैसे ही मन के भीतर भी एक व्यवस्था स्थापित की जा सकती है।

अध्याय 24 : शब्द और चेतना का रहस्य

प्रातःकाल का समय था। आश्रम के प्रांगण में पक्षियों की मधुर ध्वनि गूँज रही थी। रविशंकर ध्यान के बाद गुरुदेव के पास पहुँचा।

गुरुदेव आज उसे आश्रम के उस कक्ष में ले गए, जहाँ प्राचीन शिलालेख और विभिन्न भाषाओं के अक्षर अंकित थे।

कक्ष के मध्य एक बड़ा-सा ताड़पत्र रखा था।

उस पर लिखा था—

"शब्द ही विचारों का स्वरूप है और विचार ही कर्मों का बीज।"

रविशंकर ने उसे पढ़ा और पूछा—

"गुरुदेव, क्या वास्तव में शब्द इतना प्रभावशाली हो सकता है?"

गुरुदेव ने उत्तर दिया—

"शब्द केवल ध्वनि नहीं है। शब्द में भाव, अर्थ और चेतना का संयोग होता है। इसलिए एक ही शब्द किसी को प्रेरणा दे सकता है और वही शब्द किसी को दुख भी पहुँचा सकता है।"

उन्होंने रविशंकर को दो पात्र दिए।

एक खाली पात्र और दूसरा जल से भरा हुआ।

गुरुदेव बोले—

"जब तुम खाली पात्र में बोलोगे, तो ध्वनि केवल लौटकर आएगी। लेकिन जब शब्द मनुष्य के हृदय तक पहुँचते हैं, तो वे उसके भीतर प्रभाव उत्पन्न कर सकते हैं।"

रविशंकर ध्यान से सुन रहा था।

गुरुदेव ने कहा—

"वाणी मनुष्य की सबसे सूक्ष्म शक्तियों में से एक है। इसलिए साधक के लिए वाणी की शुद्धता आवश्यक है।"

फिर उन्होंने तीन नियम बताए—

पहला — सत्य वाणी।
ऐसा बोलना जो वास्तविकता और ईमानदारी पर आधारित हो।

दूसरा — मधुर वाणी।
ऐसे शब्द जो अनावश्यक पीड़ा न दें।

तीसरा — हितकारी वाणी।
ऐसे शब्द जो जीवन में सुधार और कल्याण लाएँ।

रविशंकर ने पूछा—

"गुरुदेव, क्या मौन और वाणी एक-दूसरे के विरोधी हैं?"

गुरुदेव मुस्कुराए।

"नहीं। सच्चा मौन ही शुद्ध वाणी को जन्म देता है। जो भीतर से शांत होता है, उसकी वाणी में भी संतुलन आता है।"

इसके बाद उन्होंने एक वीणा उठाई।

उन्होंने एक तार को हल्के से छुआ।

मधुर ध्वनि पूरे कक्ष में फैल गई।

उन्होंने कहा—

"यदि तार बहुत ढीला हो, तो स्वर नहीं निकलेगा। यदि बहुत खिंचा हो, तो टूट जाएगा।"

"मनुष्य की वाणी भी ऐसी ही है। उसमें संतुलन आवश्यक है।"

रविशंकर ने अनुभव किया कि शब्दों का उपयोग केवल बोलने के लिए नहीं, बल्कि जागरूकता के साथ करने की आवश्यकता है।

कुछ दिनों बाद आश्रम में एक घटना हुई।

एक युवा शिष्य गलती कर बैठा। कुछ लोग उसे कठोर शब्द कहने लगे।

रविशंकर ने आगे बढ़कर शांत स्वर में कहा—

"गलती हमें सीखने का अवसर देती है।"

उसके शब्द सुनकर वह शिष्य शांत हो गया।

गुरुदेव दूर खड़े यह देख रहे थे।

संध्या को उन्होंने रविशंकर से कहा—

"आज तुमने शब्दों का वास्तविक प्रयोग किया। तुमने किसी को हराने के लिए नहीं, उठाने के लिए वाणी का उपयोग किया।"

रात्रि में रविशंकर ने अपनी डायरी में लिखा—

"आज मैंने जाना कि शब्द छोटे होते हैं, पर उनका प्रभाव विशाल हो सकता है। एक कठोर शब्द संबंध तोड़ सकता है और एक प्रेमपूर्ण शब्द जीवन बदल सकता है। इसलिए वाणी भी एक साधना है।"

उसने दीपक के सामने बैठकर कुछ क्षण मौन ध्यान किया।

अब उसे समझ आने लगा था कि ब्रह्म रसायन विद्या में—

ध्वनि केवल कंपन नहीं,

शब्द केवल भाषा नहीं,

और वाणी केवल अभिव्यक्ति नहीं।

ये सब चेतना के द्वार हैं।

अध्याय 25 : ध्वनि और मस्तिष्क का विज्ञान

सुबह का समय था। आश्रम के अध्ययन कक्ष में आज विशेष तैयारी की गई थी। एक ओर प्राचीन ग्रंथ रखे थे और दूसरी ओर आधुनिक विज्ञान से संबंधित कुछ पुस्तकें।

रविशंकर आश्चर्य से यह दृश्य देख रहा था।

उसने पूछा—

"गुरुदेव, आज यहाँ विज्ञान और साधना दोनों के ग्रंथ क्यों रखे गए हैं?"

गुरुदेव मुस्कुराए और बोले—

"क्योंकि सत्य को समझने के लिए दृष्टिकोण अलग हो सकते हैं, पर खोज एक ही होती है। आज हम ध्वनि और मस्तिष्क के संबंध को समझेंगे।"

गुरुदेव ने भूमि पर एक चित्र बनाया।

एक ओर कान का चित्र था और दूसरी ओर मस्तिष्क का।

उन्होंने कहा—

"जब कोई ध्वनि उत्पन्न होती है, तो वह कंपन के रूप में हमारे कानों तक पहुँचती है। कान इन कंपन तरंगों को ग्रहण करते हैं और मस्तिष्क उन्हें संकेतों में बदलकर समझता है।"

रविशंकर अपने रसायन विज्ञान के ज्ञान से इसे जोड़ने लगा।

गुरुदेव ने आगे कहा—

"ध्वनि केवल सुनने की वस्तु नहीं है। वह हमारे ध्यान, भावनाओं और मानसिक अवस्था पर भी प्रभाव डाल सकती है।"

उन्होंने एक वीणा बजाई।

पहले उन्होंने तीव्र स्वर बजाया।

फिर शांत और मधुर स्वर।

उन्होंने पूछा—

"दोनों अनुभवों में अंतर महसूस हुआ?"

रविशंकर ने कहा—

"हाँ गुरुदेव। पहला स्वर अधिक उत्तेजित कर रहा था, दूसरा शांत अनुभव दे रहा था।"

गुरुदेव बोले—

"यही कारण है कि संगीत, मंत्र-जप और लयबद्ध ध्वनियों का उपयोग अनेक परंपराओं में मन को एकाग्र करने के लिए किया गया है।"

फिर उन्होंने एक जल-पात्र रखा।

उसमें पानी शांत था।

गुरुदेव ने पास रखी घंटी बजाई।

ध्वनि के साथ जल की सतह पर हल्की तरंगें दिखाई दीं।

उन्होंने कहा—

"कंपन का प्रभाव दिखाई दे सकता है। इसी प्रकार ध्वनि और विचारों के सूक्ष्म प्रभावों को समझने के लिए मनुष्य ने सदियों से अध्ययन किया है।"

रविशंकर ने पूछा—

"क्या ध्वनि सीधे चेतना को बदल सकती है?"

गुरुदेव ने उत्तर दिया—

"ध्वनि स्वयं एक माध्यम है। उसका प्रभाव व्यक्ति की स्थिति, ध्यान, भावना और समझ पर निर्भर करता है। सजग अभ्यास के साथ ध्वनि मन को स्थिर करने का साधन बन सकती है।"

इसके बाद गुरुदेव उसे आश्रम की प्रयोगशाला में ले गए।

वहाँ कुछ शिष्य ध्वनि, श्वास और ध्यान के अनुभवों का अध्ययन कर रहे थे।

एक शिष्य ने बताया—

"जब हम शांत वातावरण में ध्यान करते हैं, तो हमारी एकाग्रता बढ़ती है और मन अधिक स्थिर महसूस होता है।"

रविशंकर ने पूछा—

"तो क्या यही ब्रह्म रसायन विद्या में ध्वनि का विज्ञान है?"

गुरुदेव ने कहा—

"हाँ, लेकिन इसे केवल बाहरी ध्वनि तक सीमित मत समझो। मन के भीतर भी निरंतर संवाद चलता रहता है। अपने विचारों की ध्वनि को समझना भी उतना ही आवश्यक है।"

उन्होंने आगे कहा—

"मनुष्य के भीतर नकारात्मक विचारों का शोर हो तो बाहरी मधुर ध्वनि भी कम प्रभावी हो सकती है। इसलिए बाहरी नाद और आंतरिक शांति दोनों का संतुलन आवश्यक है।"

उस दिन रविशंकर ने एक नया अभ्यास सीखा।

वह कुछ समय तक शांत बैठता, फिर किसी एक ध्वनि पर ध्यान केंद्रित करता और देखता कि उसका मन किस प्रकार प्रतिक्रिया करता है।

धीरे-धीरे उसे समझ आने लगा कि ध्वनि केवल कानों से नहीं सुनी जाती—

वह मन से अनुभव की जाती है।

रात्रि में उसने अपनी डायरी में लिखा—

"आज मैंने जाना कि ध्वनि और चेतना का संबंध बहुत गहरा है। कंपन बाहर से आता है, पर उसका अनुभव भीतर होता है। इसलिए साधना में ध्वनि के साथ-साथ मन की अवस्था भी महत्वपूर्ण है।"

उसने आकाश की ओर देखा।

हवा में पत्तों की हल्की सरसराहट थी।

नदी की धारा बह रही थी।

दूर मंदिर की घंटी बज रही थी।

अब ये सभी ध्वनियाँ उसे केवल आवाज़ नहीं लग रही थीं।

उसे उनमें एक लय दिखाई देने लगी थी।

अध्याय 26 : शरीर – एक जीवित प्रयोगशाला

प्रातःकाल का समय था। सूर्य की किरणें आश्रम के औषधि उद्यान पर पड़ रही थीं। रविशंकर आज पहले से अधिक उत्सुक था, क्योंकि गुरुदेव ने कहा था कि आज वह सबसे अद्भुत प्रयोगशाला को समझेगा।

वह प्रयोगशाला बाहर नहीं, स्वयं उसके भीतर थी।

गुरुदेव उसे आश्रम की एक विशेष कुटिया में ले गए। वहाँ एक ओर आधुनिक विज्ञान के उपकरण रखे थे और दूसरी ओर योग, आयुर्वेद तथा ध्यान से संबंधित ग्रंथ।

रविशंकर ने पूछा—

"गुरुदेव, क्या शरीर को भी एक प्रयोगशाला माना जा सकता है?"

गुरुदेव ने उत्तर दिया—

"हाँ। मनुष्य का शरीर प्रकृति की सबसे जटिल रचनाओं में से एक है। इसके भीतर हर क्षण असंख्य रासायनिक और जैविक प्रक्रियाएँ चलती रहती हैं।"

उन्होंने एक दीपक दिखाया।

"इस दीपक को जलने के लिए तेल, बाती और अग्नि तीनों चाहिए।"

फिर मानव शरीर की ओर संकेत करते हुए बोले—

"उसी प्रकार शरीर के लिए भोजन, श्वास, जल, विश्राम और संतुलित विचार आवश्यक हैं।"

रविशंकर ध्यान से सुन रहा था।

गुरुदेव ने कहा—

"तुमने रसायन विज्ञान पढ़ा है। जानते हो कि अलग-अलग तत्वों के संयोजन से नए पदार्थ बनते हैं। उसी प्रकार शरीर में अणु, कोशिकाएँ, हार्मोन और तंत्र मिलकर जीवन की प्रक्रिया को चलाते हैं।"

उन्होंने एक पौधे की ओर संकेत किया।

"यह पौधा मिट्टी, जल और सूर्य के प्रकाश को लेकर अपने शरीर का निर्माण करता है।"

"मनुष्य भी भोजन, वायु और अनुभवों से अपने शरीर और मन का निर्माण करता है।"

रविशंकर ने पूछा—

"क्या विचार भी शरीर को प्रभावित करते हैं?"

गुरुदेव ने कहा—

"विचार और भावनाएँ मनुष्य के अनुभवों को प्रभावित करते हैं। तनाव, शांति, उत्साह और भय जैसी अवस्थाएँ शरीर की प्रतिक्रियाओं से जुड़ी हो सकती हैं। इसलिए मन की देखभाल भी शरीर की देखभाल का भाग है।"

इसके बाद उन्होंने रविशंकर को शरीर की विभिन्न प्रणालियों का अध्ययन कराया।

उन्होंने बताया—

श्वसन तंत्र
जो शरीर को ऑक्सीजन प्रदान करता है।

पाचन तंत्र
जो भोजन को ऊर्जा और पोषक तत्वों में बदलता है।

तंत्रिका तंत्र
जो शरीर और मस्तिष्क के बीच संदेशों का आदान-प्रदान करता है।

रक्त संचार तंत्र
जो पूरे शरीर में आवश्यक पदार्थों को पहुँचाता है।

गुरुदेव बोले—

"इन सभी प्रणालियों का संतुलन ही स्वास्थ्य का आधार है।"

फिर उन्होंने कहा—

"अब अपनी श्वास को देखो।"

रविशंकर ने आँखें बंद कीं।

उसे अनुभव हुआ कि एक साधारण-सी श्वास के पीछे कितनी जटिल प्रक्रियाएँ चल रही हैं।

वायु भीतर जा रही थी।

शरीर उसका उपयोग कर रहा था।

कोशिकाएँ ऊर्जा बना रही थीं।

जीवन निरंतर चल रहा था।

उसके मन में आश्चर्य उत्पन्न हुआ।

"गुरुदेव, हम प्रतिदिन यह सब करते हैं, पर कभी ध्यान नहीं देते।"

गुरुदेव मुस्कुराए।

"यही तो अज्ञान है। जो सबसे निकट है, मनुष्य अक्सर उसे ही नहीं देख पाता। स्वयं का शरीर भी एक महान रहस्य है।"

संध्या समय गुरुदेव उसे एक दर्पण के सामने ले गए।

उन्होंने कहा—

"इस शरीर को केवल बाहरी रूप से मत देखो। इसके भीतर अनगिनत कोशिकाएँ, ऊर्जा प्रक्रियाएँ और जीवन की सूक्ष्म गतिविधियाँ चल रही हैं।"

रविशंकर ने दर्पण में स्वयं को देखा।

आज पहली बार उसे अपना शरीर केवल एक आकृति नहीं, बल्कि प्रकृति की अद्भुत रचना लगा।

रात्रि में उसने अपनी डायरी में लिखा—

"आज मैंने जाना कि मेरा शरीर ही मेरी पहली प्रयोगशाला है। इसमें प्रकृति, रसायन, ऊर्जा और चेतना का अद्भुत समन्वय हो रहा है। यदि मैं इसे समझूँ और सम्मान दूँ, तो मैं जीवन को और गहराई से समझ सकता हूँ।"

वह बाहर आया।

आकाश में तारे चमक रहे थे।

उसे लगा कि जैसे विशाल ब्रह्मांड में अनगिनत ग्रह अपनी-अपनी गति से चल रहे हैं, वैसे ही उसके शरीर के भीतर भी एक सूक्ष्म ब्रह्मांड सक्रिय है।

अध्याय 27 : आहार और ऊर्जा का विज्ञान

प्रातःकाल आश्रम में एक विशेष सुगंध फैली हुई थी। रसोई से ताज़े अनाज, औषधीय पौधों और प्राकृतिक पदार्थों की सुगंध आ रही थी। रविशंकर ने देखा कि आज भोजन की तैयारी भी एक साधना की तरह की जा रही थी।

वह गुरुदेव के पास पहुँचा और पूछा—

"गुरुदेव, क्या भोजन भी साधना का भाग हो सकता है?"

गुरुदेव ने मुस्कुराकर उत्तर दिया—

"भोजन केवल पेट भरने का साधन नहीं है। यह शरीर को ऊर्जा देने वाला माध्यम है। जिस प्रकार विचार मन को प्रभावित करते हैं, उसी प्रकार आहार शरीर और जीवनशैली को प्रभावित करता है।"

गुरुदेव उसे आश्रम की रसोई में ले गए।

वहाँ शिष्य शांत भाव से भोजन बना रहे थे।

कोई अनावश्यक शोर नहीं था।

कोई जल्दी नहीं थी।

हर कार्य ध्यानपूर्वक किया जा रहा था।

गुरुदेव बोले—

"भोजन बनाने वाले की भावना, भोजन ग्रहण करने वाले की सजगता और भोजन की गुणवत्ता—तीनों महत्वपूर्ण हैं।"

रविशंकर ने पूछा—

"क्या केवल अच्छा भोजन करना ही पर्याप्त है?"

गुरुदेव ने कहा—

"नहीं। भोजन के साथ मन की अवस्था भी महत्वपूर्ण है। यदि मन अत्यधिक तनाव और अशांति में हो, तो जीवन का संतुलन प्रभावित हो सकता है।"

फिर वे उसे खेतों की ओर ले गए।

आश्रम के खेत में प्राकृतिक तरीके से अन्न, फल और सब्जियाँ उगाई जाती थीं।

गुरुदेव ने एक बीज हाथ में लिया।

उन्होंने कहा—

"इस छोटे-से बीज में एक विशाल वृक्ष की संभावना छिपी होती है। लेकिन उसे सही मिट्टी, जल और वातावरण चाहिए।"

"इसी प्रकार शरीर को भी सही पोषण और संतुलित जीवन की आवश्यकता होती है।"

रविशंकर ने अपने रसायन विज्ञान के ज्ञान को याद किया।

उसे समझ आया कि भोजन शरीर में जाकर विभिन्न रासायनिक प्रक्रियाओं से गुजरता है और ऊर्जा में परिवर्तित होता है।

गुरुदेव बोले—

"शरीर एक परिवर्तन प्रणाली है। भोजन ऊर्जा में बदलता है, ऊर्जा कर्म में बदलती है, और कर्म जीवन का निर्माण करते हैं।"

इसके बाद उन्होंने भोजन के तीन गुणों को समझाया—

संतुलित आहार
जो शरीर को आवश्यक पोषण प्रदान करे।

सजग आहार
जिसे ध्यानपूर्वक और उचित मात्रा में ग्रहण किया जाए।

शुद्ध आहार
जो शरीर और प्रकृति के संतुलन का सम्मान करे।

रविशंकर ने पूछा—

"गुरुदेव, क्या उपवास भी साधना है?"

गुरुदेव ने उत्तर दिया—

"यदि उपवास केवल शरीर को कष्ट देने के लिए हो, तो उसका उद्देश्य अधूरा है। लेकिन यदि वह संयम, जागरूकता और आत्मनियंत्रण सिखाए, तो वह साधना का माध्यम बन सकता है।"

उस दिन उन्होंने रविशंकर को एक अभ्यास दिया।

भोजन करते समय—

धीरे खाना,

भोजन के प्रति कृतज्ञता रखना,

और शरीर की आवश्यकता को समझना।

कुछ दिनों बाद रविशंकर ने अनुभव किया कि अब वह भोजन केवल स्वाद के लिए नहीं, बल्कि शरीर के प्रति सम्मान के भाव से ग्रहण करता है।

संध्या समय गुरुदेव ने कहा—

"साधक को अपने शरीर को त्यागना नहीं, बल्कि उसे साधना का योग्य माध्यम बनाना चाहिए। स्वस्थ शरीर में स्थिर मन और जागरूक चेतना का विकास सरल होता है।"

रात्रि में रविशंकर ने डायरी में लिखा—

"आज मैंने जाना कि भोजन भी एक प्रकार का रसायन है। जो मैं ग्रहण करता हूँ, वही मेरे शरीर का निर्माण करता है। इसलिए आहार केवल पदार्थ नहीं, जीवन के प्रति मेरा दृष्टिकोण भी है।"

उसने आकाश की ओर देखा।

प्रकृति का प्रत्येक तत्व एक-दूसरे से जुड़ा हुआ था।

मिट्टी से अन्न,

अन्न से ऊर्जा,

ऊर्जा से कर्म,

और कर्म से जीवन।

अध्याय 28 : विश्राम और पुनर्जागरण का विज्ञान

रात्रि का अंतिम पहर था। आश्रम में चारों ओर शांति थी। वृक्ष स्थिर थे, नदी का प्रवाह धीमा था और आकाश तारों से भरा हुआ था।

रविशंकर ध्यान कक्ष से बाहर आया। उसने देखा कि प्रकृति का प्रत्येक भाग एक लय में विश्राम कर रहा है।

सुबह गुरुदेव ने उसे बुलाया और कहा—

"आज हम उस प्रक्रिया को समझेंगे, जिसे मनुष्य अक्सर साधारण समझता है, लेकिन जीवन के लिए अत्यंत आवश्यक है—विश्राम।"

रविशंकर ने पूछा—

"गुरुदेव, क्या विश्राम भी साधना का विषय हो सकता है?"

गुरुदेव मुस्कुराए।

"जो व्यक्ति विश्राम का महत्व नहीं समझता, वह ऊर्जा का संतुलन भी नहीं समझ सकता। प्रकृति में हर क्रिया के बाद विश्राम की अवस्था आती है। दिन के बाद रात, ज्वार के बाद भाटा, जागरण के बाद निद्रा।"

वे उसे एक वृक्ष के नीचे ले गए।

गुरुदेव बोले—

"इस वृक्ष को देखो। यह हमेशा फल नहीं देता। कुछ समय यह शांत रहता है, अपनी आंतरिक शक्ति को संचित करता है।"

"मनुष्य भी ऐसा ही है। शरीर और मन को पुनः संतुलित होने के लिए विश्राम चाहिए।"

रविशंकर ने पूछा—

"लेकिन कुछ लोग कम सोकर भी बहुत काम करते हैं।"

गुरुदेव ने उत्तर दिया—

"काम की मात्रा से अधिक महत्वपूर्ण है ऊर्जा की गुणवत्ता। थका हुआ मन निर्णयों में भ्रमित हो सकता है और असंतुलित शरीर साधना में स्थिर नहीं रह सकता।"

फिर उन्होंने उसे शरीर की प्राकृतिक लय के बारे में समझाया।

"दिन में सक्रियता और रात में विश्राम—यह प्रकृति की व्यवस्था है। नींद के समय शरीर अपनी मरम्मत और संतुलन की अनेक प्रक्रियाएँ करता है।"

रविशंकर ने पूछा—

"क्या केवल सोना ही पर्याप्त है?"

गुरुदेव बोले—

"नहीं। विश्राम केवल शरीर का नहीं, मन का भी होना चाहिए।"

उन्होंने तीन प्रकार के विश्राम बताए—

1. शरीर का विश्राम

जब शरीर को उचित आराम और पुनर्निर्माण का अवसर मिलता है।

2. मन का विश्राम

जब अनावश्यक विचारों का भार कम होता है और मन शांत होता है।

3. चेतना का विश्राम

जब साधक कुछ समय केवल साक्षी भाव में रहता है।

गुरुदेव ने रविशंकर को एक अभ्यास कराया।

उन्होंने कहा—

"आज रात सोने से पहले अपने दिन को याद करना, लेकिन आलोचना नहीं करना। केवल देखना कि आज तुमने क्या सीखा।"

उस रात रविशंकर ने ऐसा ही किया।

उसने महसूस किया कि पहले वह दिन की घटनाओं को लेकर चिंतित रहता था, लेकिन अब वह उन्हें सीख के रूप में देख पा रहा था।

कुछ समय बाद उसका मन शांत हो गया।

संध्या को गुरुदेव ने कहा—

"जिस प्रकार किसान खेत को कुछ समय खाली छोड़ता है ताकि मिट्टी फिर से उर्वर बन सके, उसी प्रकार मनुष्य को भी विश्राम चाहिए ताकि उसकी चेतना नई ऊर्जा के साथ आगे बढ़ सके।"

रविशंकर ने पूछा—

"गुरुदेव, क्या गहरी ध्यान अवस्था भी एक प्रकार का विश्राम है?"

गुरुदेव ने उत्तर दिया—

"हाँ, जब ध्यान में मन का अनावश्यक संघर्ष शांत होता है, तब भीतर एक गहरा संतुलन अनुभव हो सकता है।"

रात्रि में रविशंकर ने अपनी डायरी में लिखा—

"आज मैंने जाना कि विश्राम आलस्य नहीं है। यह जीवन की पुनर्निर्माण प्रक्रिया है। जैसे प्रकृति हर क्षण संतुलन खोजती है, वैसे ही मनुष्य को भी अपने भीतर संतुलन बनाना सीखना चाहिए।"

उसने दीपक बुझाया और शांत मन से सो गया।

अब उसकी साधना धीरे-धीरे शरीर से मन और मन से चेतना की ओर बढ़ रही थी।

अध्याय 29 : विज्ञान और चेतना का संगम

प्रातःकाल आश्रम में एक विशेष सभा आयोजित की गई थी। आज गुरुदेव ने सभी शिष्यों को अध्ययन कक्ष में बुलाया था। वहाँ एक ओर प्राचीन ग्रंथ रखे थे और दूसरी ओर आधुनिक विज्ञान की पुस्तकें।

रविशंकर ने आश्चर्य से पूछा—

"गुरुदेव, आज फिर विज्ञान और अध्यात्म को साथ रखा गया है?"

गुरुदेव मुस्कुराए।

"क्योंकि सत्य को किसी एक सीमा में बाँधा नहीं जा सकता। विज्ञान बाहरी जगत के नियमों को समझने का प्रयास करता है और चेतना का अध्ययन हमें अनुभव करने वाले के स्वरूप को समझने की ओर ले जाता है।"

उन्होंने एक दीपक जलाया।

"विज्ञान पूछता है—यह प्रकाश कैसे उत्पन्न हुआ?"

"चेतना पूछती है—इस प्रकाश को अनुभव कौन कर रहा है?"

रविशंकर ध्यान से सुन रहा था।

गुरुदेव ने आगे कहा—

"प्रश्न अलग हो सकते हैं, लेकिन खोज का उद्देश्य ज्ञान को गहरा करना है।"

फिर उन्होंने एक जल की बूंद हाथ में ली।

"इस बूंद में जल के गुण हैं। यदि इसे समुद्र में मिला दो, तो यह उसी समुद्र का भाग बन जाती है।"

"मनुष्य भी इसी प्रकार प्रकृति का भाग है। उसका शरीर पदार्थों से बना है, लेकिन वह अनुभव, विचार और जागरूकता भी रखता है।"

रविशंकर ने पूछा—

"गुरुदेव, क्या आधुनिक विज्ञान चेतना को पूरी तरह समझ पाया है?"

गुरुदेव ने शांत स्वर में कहा—

"चेतना एक गहन विषय है। विज्ञान मस्तिष्क, तंत्रिका तंत्र और मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है। वहीं आध्यात्मिक परंपराएँ आत्मनिरीक्षण और अनुभव के माध्यम से चेतना को समझने का प्रयास करती हैं। दोनों दृष्टिकोण अपने-अपने तरीके से महत्वपूर्ण हैं।"

इसके बाद गुरुदेव उसे आश्रम की छोटी प्रयोगशाला में ले गए।

वहाँ शिष्य पौधों की वृद्धि, ध्वनि के प्रभाव, ध्यान के अनुभव और मानव व्यवहार के अध्ययन से जुड़े प्रयोगों पर चर्चा कर रहे थे।

एक शिष्य ने बताया—

"हम यह समझने का प्रयास कर रहे हैं कि वातावरण, विचार और जीवनशैली मनुष्य के अनुभवों को किस प्रकार प्रभावित करते हैं।"

गुरुदेव बोले—

"ज्ञान का उद्देश्य केवल सिद्ध करना नहीं, समझना और जीवन को बेहतर बनाना भी है।"

उन्होंने रविशंकर से पूछा—

"तुमने रसायन विज्ञान में क्या सीखा?"

रविशंकर ने उत्तर दिया—

"कि पदार्थ छोटे-छोटे कणों से बना है और उनके बीच संबंधों से नए गुण उत्पन्न होते हैं।"

गुरुदेव ने कहा—

"ठीक। इसी प्रकार जीवन में भी शरीर, मन, भावनाएँ और अनुभव एक-दूसरे से जुड़े हैं। किसी एक पक्ष को समझकर सम्पूर्णता को नहीं समझा जा सकता।"

फिर उन्होंने एक वृक्ष की ओर संकेत किया।

"विज्ञान उसकी संरचना, कोशिकाएँ और वृद्धि की प्रक्रिया को समझ सकता है।"

"लेकिन उसी वृक्ष के नीचे बैठकर मिलने वाली शांति का अनुभव व्यक्ति स्वयं करता है।"

रविशंकर के भीतर एक नया दृष्टिकोण विकसित होने लगा।

उसे समझ आया कि विज्ञान और अध्यात्म को विरोधी मानना आवश्यक नहीं है।

दोनों मानव जिज्ञासा के अलग-अलग मार्ग हो सकते हैं।

रात्रि में उसने अपनी डायरी में लिखा—

"आज मैंने जाना कि विज्ञान हमें संसार को समझने के साधन देता है और चेतना हमें स्वयं को समझने की दिशा देती है। जब दोनों का संतुलन होता है, तब ज्ञान अधिक व्यापक हो जाता है।"

उसने आकाश की ओर देखा।

अनंत तारों के बीच उसे लगा कि ब्रह्मांड भी एक विशाल प्रयोगशाला है और मनुष्य उसके भीतर एक जिज्ञासु यात्री।

अब उसकी यात्रा अपने अंतिम चरण की ओर बढ़ रही थी।

अध्याय 30 : गुरु की अंतिम शिक्षा

प्रातःकाल का समय था। आश्रम में एक विशेष शांति थी। ऐसा लग रहा था जैसे प्रकृति भी किसी महत्वपूर्ण क्षण की प्रतीक्षा कर रही हो।

रविशंकर को गुरुदेव ने आज उसी पर्वत की चोटी पर बुलाया, जहाँ उसकी साधना की कई महत्वपूर्ण शिक्षाएँ प्रारंभ हुई थीं।

दोनों कुछ देर तक मौन बैठे रहे।

सूर्य धीरे-धीरे ऊपर उठ रहा था और उसकी किरणें पूरे वन को प्रकाशित कर रही थीं।

गुरुदेव ने कहा—

"रविशंकर, तुम्हारी साधना का एक चरण पूर्ण हुआ है। अब समय है कि तुम पीछे मुड़कर देखो और समझो कि तुमने क्या पाया।"

रविशंकर ने विनम्रता से कहा—

"गुरुदेव, मैंने बहुत कुछ सीखा, पर मुझे लगता है कि अभी भी बहुत कुछ सीखना बाकी है।"

गुरुदेव के चेहरे पर संतोष की मुस्कान आई।

"यही समझ तुम्हारी सबसे बड़ी उपलब्धि है। जो व्यक्ति स्वयं को पूर्ण मान लेता है, उसकी यात्रा रुक जाती है।"

उन्होंने एक-एक करके उसकी यात्रा को स्मरण कराया।

"तुम यहाँ प्रश्न लेकर आए थे।"

"फिर तुमने साधना का संकल्प लिया।"

"तुमने मन को देखा, भावनाओं को समझा, मंत्र और मौन का अनुभव किया।"

"तुमने प्राण, ऊर्जा, सेवा और विनम्रता का महत्व जाना।"

रविशंकर शांत होकर सुनता रहा।

गुरुदेव ने कहा—

"लेकिन ब्रह्म रसायन विद्या का सार केवल इन अभ्यासों में नहीं है। इसका सार है—अपने जीवन को जागरूकता, करुणा और सत्य के साथ जीना।"

उन्होंने एक बीज उसकी हथेली पर रखा।

"इस बीज को देखो। इसमें वृक्ष छिपा है, लेकिन उसे प्रकट होने के लिए समय, धैर्य और उचित वातावरण चाहिए।"

"इसी प्रकार मनुष्य के भीतर भी अनंत संभावनाएँ छिपी हैं। साधना उन्हें जागृत करने का मार्ग है।"

रविशंकर ने पूछा—

"गुरुदेव, अब मेरा अगला कर्तव्य क्या है?"

गुरुदेव ने दूर गाँवों की ओर संकेत किया।

"जो ज्ञान तुम्हें मिला है, उसे केवल अपने तक सीमित मत रखना। ज्ञान का वास्तविक मूल्य तब है जब वह किसी के जीवन में प्रकाश बन सके।"

उन्होंने आगे कहा—

"विज्ञान सीखो, पर विनम्रता मत खोओ। अध्यात्म अपनाओ, पर विवेक मत छोड़ो। अनुभव प्राप्त करो, पर अहंकार मत आने दो।"

ये शब्द रविशंकर के हृदय में अंकित हो गए।

गुरुदेव ने उसे एक अंतिम अभ्यास दिया।

"हर दिन स्वयं से तीन प्रश्न पूछना—

मैंने आज क्या सीखा?

मैंने आज किसका कल्याण किया?

और क्या आज मैं कल से बेहतर मनुष्य बना?"

रविशंकर ने गुरु के चरणों में प्रणाम किया।

उसकी आँखों में कृतज्ञता थी।

गुरुदेव ने आशीर्वाद देते हुए कहा—

"अब तुम्हारी यात्रा केवल तुम्हारी नहीं रही। जहाँ भी जाओ, सत्य, ज्ञान और करुणा का दीप लेकर जाना।"

संध्या समय रविशंकर आश्रम के उसी मार्ग पर चल रहा था, जहाँ कभी वह एक जिज्ञासु विद्यार्थी बनकर आया था।

लेकिन आज वह एक साधक बन चुका था।

उसने अंतिम बार आश्रम की ओर देखा।

वह जानता था कि गुरु का साथ बाहरी रूप से कम हो सकता है, लेकिन उनकी शिक्षा उसके भीतर सदैव जीवित रहेगी।

रात्रि में उसने अपनी डायरी में लिखा—

"गुरु ने मुझे कोई तैयार उत्तर नहीं दिए। उन्होंने मुझे स्वयं खोजने की क्षमता दी। मैंने जाना कि सबसे बड़ा ज्ञान बाहर नहीं, भीतर जागने वाली चेतना है।"

उसने कलम बंद की।

आकाश में पूर्णिमा का चंद्रमा चमक रहा था।

उसे लगा कि उसकी अंतर्यात्रा अभी समाप्त नहीं हुई है।

अब उसे इस अनुभव को संसार के कल्याण में बदलना है।

क्योंकि साधना का अंतिम चरण स्वयं से ऊपर उठकर **समस्त जीवन के प्रति प्रेम और सेवा** है।

अगली रात्रि में रविशंकर अपनी अंतिम डायरी लिख रहा था।

उसने लिखा—

"मैंने खोज शुरू की थी यह जानने के लिए कि ब्रह्म रसायन विद्या क्या है। आज समझ आया कि यह किसी एक सूत्र या पुस्तक में सीमित नहीं है। यह जीवन को प्रेम, ज्ञान और जागरूकता के साथ जीने की कला है।"

कुछ देर बाद उसने कलम रख दी।

दीपक की लौ शांत होकर भी प्रकाश दे रही थी।

उसे लगा जैसे गुरुदेव की वाणी फिर सुनाई दे रही हो—

"ज्ञान का दीप जलाते रहना।"

रविशंकर ने आकाश की ओर देखा।

अनंत तारों के बीच उसे एक गहरा संदेश दिखाई दिया—

मनुष्य की सबसे बड़ी खोज बाहरी संसार को जीतना नहीं,

बल्कि अपने भीतर छिपे प्रकाश को पहचानना है।

और जब एक व्यक्ति जागता है,

तो उसके माध्यम से अनेक जीवन प्रकाशित हो सकते हैं।

ब्रह्म रसायन विद्या

एक साधक की चेतना यात्रा

समाप्त नहीं... एक नई शुरुआत।

— रविशंकर साहू

(श्रीश्रीविवस्वत् मनू रविशंकर बाबाजी)

swayambalgurukul@gmail.com

9302855501

हमारी सेवाए :- वास्तु परामर्श, योग प्रशिक्षण

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

ब्रह्म रसायन विद्या

एक साधक की चेतना यात्रा

एक आध्यात्मिक-वैज्ञानिक उपन्यास

कथा • विज्ञान • साधना • चेतना का अदमुत समन्वय

विषय-विस्तार

ध्वनि • अक्षर • ऊर्जा • मन • ध्यान • आत्मज्ञान • मानव चेतना

एक साधक की वह यात्रा,
जहाँ विज्ञान के प्रश्न,
अध्यात्म के अनुभव और
चेतना की खोज एक नए
आयाम को प्रकट करते हैं।

लेखक
रविशंकर साहू

मार्गदर्शक
श्रीश्रीकाल्कि महाऋषि मालोवावा

प्रकाशनः
स्वयंबल गुरुकुल
SKAR – Spiritual Knowledge Associate and Research
सावर्णी मनुष्यधर्म्म